14

निजी क्षेत्रक और आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रन

संविधान में दिए गए नीति-निर्देशक सिद्धांतों के अनुसरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने मार्च, 1971 के लोक सभा चुनावों के अवसर पर जारी किए गए अपने घोषणापत्र में यह वचन दिया कि "कतिपय लोगों के हाथों में आर्थिक शक्ति और संपत्ति का संकेंद्रण नहीं होने दिया जाएगा क्योंकि यह स्थिति लोकतंत्र और सामाजिक न्याय की संकल्पना के साथ मेल नहीं खाती।" लेकिन अन्य क्षेत्रों के समान ही सरकारी प्रलेखों में अभिव्यक्त पवित्र सामान्योक्तियों की बिल्कुल ही और जानबूझकर उद्देश्य-परक विकास के माध्यम से अवज्ञा कर दी गई है।

तालिका 110 (पृ० 403) ए० एन० ओजा के लेख—'हाउ बिग इज इंडियाज बिग बिजनेस ?' से ली गई है। यह लेख 18 सितंबर, 1977 के 'द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' में प्रकाशित हुआ था। इस लेख में जो विवरण दिए गए हैं उनका संबंध उन बड़ी-बड़ी व्यापारिक संस्थाओं के आकार और संवृद्धि से है जिसमें उनकी कुल (निवल) संपत्तियों की दृष्टि से 1951 से 1975 तक हिसाब लगाया गया है।

इस विवरण-पत्र में उन 27 औद्योगिक ग्रुप या संस्थाओं के संबंध में सूचना दी गई है जो 1971 में परिसंपत्तियों की मात्रा के अनुसार क्रमबद्ध किए गए हैं, जैसा कि कंपनियों के मामलों के विभाग के एक संकलन से प्रकट होता है। इस विवरण-पत्र में वर्ष 1951, 1958, 1963, 1966, 1971 और 1975-76 में उन संस्थाओं की परिसंपत्तियों का मूल्य दिया गया है जो विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों पर आधारित है। फिर भी विभिन्न वर्षों के ये आंकड़े एक दूसरे के साथ सही अर्थ में तुलनीय नहीं हैं क्योंकि प्रत्येक औद्योगिक संस्था की विभिन्न फर्मों की पहचान के लिए अलग-अलग अध्ययनों की दृष्टि से अपनाया गया लक्ष्य एक जैसा नहीं है जबकि उन सभी का एक

ही उद्देश्य है, अर्थात् उन फर्मों की पहचान करना जो 'संस्था के मालिकों' के नाम से नियंत्रित की जाती हैं। उदाहरण के लिए 1951 के आंकड़े केवल पब्लिक लिमिटेड कंपनियों के संबंध में हैं और 1958 के आंकड़ों में प्राइवेट लिमिटेड कंपनियों के बारे में भी सूचना दी गई है। दूसरे, 1963 के संबंध में विवरण-पत्र में वे आंकड़े दिए गए हैं जो 'मोनोपलीज इनक्वायरी कमीशन रिपोर्ट' में प्रकाशित किए गए थे लेकिन बिड़ला और सूरजमल नागरमल ग्रुप के संबंध में दोनों प्रकार की कंपनियों—प्राइवेट लिमिटेड और पब्लिक लिमिटेड—के आंकड़े जी० टी० कोठारी की रिपोर्ट से दिखाए गए हैं और ब्रिटिश इंडिया कॉरपोरेशन गुप के आंकड़े भी शामिल किए गए हैं। तीसरे, 1966 और 1971 के आंकड़े मोटे तौर पर एक ही प्रकार की कंपनियों पर आधारित हैं यद्यपि इनमें कतिपय परिवर्तन भी किए गए हैं। चौथे, 1975-76 के लिए 'इकनॉमिक टाइम्स' द्वारा प्रकाशित आंकड़ों का कोई आधार ज्ञात नहीं है। शायद इस पत्रिका में यह समझा गया कि कई कंपनियां अपने-अपने ग्रुपों की थीं जबकि वे मोनोपलीज़ एंड रेस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रेक्टीसेज एक्ट के अधीन रजिस्टर्ड नहीं की गई थीं।

फिर भी बाद में केवल वही कंपनियां या उपक्रम जिन्हें मोनोपलीज़ एंड रेस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसेज़ एक्ट की धारा-26 के अधीन रजिस्टर्ड किया गया था वे फरवरी 1970में संशोधित नीति की घोषणा के बाद औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति के प्रयोजनों के लिए बड़े-बड़े औद्योगिक हाउस समझे जाने लगे। तालिका 111 (पृ० 405) में उन 20 बड़े-बड़े औद्योगिक हाउसों की 1972 और 1977 की परिसंपत्तियों को दिखाया गया है जिनका 1977 की परिसंपत्तियों की मात्रा के अनुसार कोटीकरण किया गया है (30 जून, 1978 को मोनोपलीज़ एंड रेस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसेज़ एक्ट की धारा 26 के अंतर्गत रजिस्टर्ड की गई थीं)।

तालिका 110

व्यापारिक ग्रुपों का आकार और वृद्धि : कुल परिसंपत्तियां

(करोड़ों रुपयों में)

व्यापारिक समूह	1951 (आर०के०एच० रिपोर्ट)	1958 (आर०के०एच० रिपोर्ट)	1963 एम०आई०सी० रिपोर्ट)	1966 (आई०एल०पी० आई० सी० रिपोर्ट)	1971 (कंपनी मामलों का विभाग)	1975-76 इकनॉमिक टाइम्स)	1963 और 1971 के मध्य वृद्धि की प्रतिशतता	1972 और 1975-76 के मध्य वृद्धि की प्रतिशतता
1	2	3	4	5	6	7	8	9
टाटा	116	303	418 (1)	505 (1)	818 (1)	975 (2)	96	42.2
बिड़ला	153	294	304 (2)	458 (2)	726 (2)	1065 (1)	139	46.7
मफतलाल	13	25	46 (16)	93 (7)	235 (3)	284 (3)	411	29.9
मार्टिन बर्न	41	112	150 (3)	153 (3)	173 (4)	173 (4)	15	—
बांगुर	20	54	78 (5)	104 (4)	149 (5)	196 (7)	91	40.0
थापर	16	47	72 (7)	99 (5)	145 (6)	204 (6)	101	54.7
आई० सी० आई०	—	—	37 (19)	50 (20)	137 (7)	182 (10)	270	24.3
ए० सी० सी०	22	49	77 (6)	90 (8)	129 (8)	169 (12)	68	23.3
श्रीराम	12	27	55 (12)	74 (10)	128 (9)	187 (8)	133	35.6
जे० के० सिंहानिया	37	39	59 (10)	67 (12)	119 (10)	224 (4)	102	63.8
सूरजमल नागरमल	—	—	81 (4)	96 (6)	114 (11)	—	41	—
वालचन्द	13	20	55 (11)	81 (9)	103 (12)	135 (17)	87	35.9

(क्रमश:)

1	2	3	4	5	6	7	8	9
साराभाई	—	—	43 (17)	57 (16)	97 (13)	183 (9)	126	40.9
क्लिक	—	—	42 (18)	51 (13)	—	139 (16)	—	48.8
मैकनिल चैरी/बिर्न्ना	—	—	50 (13)	57 (15)	97 (14)	—	94	—
किर्लोस्कर	2	6	19 (36)	43 (23)	95 (15)	117 (11)	400	54.8
बजाज	—	—	21 (30)	35 (18)	अनुपलब्ध	143 (15)	—	51.1
साहू जैन	130	257	68 (8)	59 (14)	93 (16)	—	37	—
सिंधिया	25	48	47 (14)	56 (17)	90 (17)	217 (5)	92	70.9
बर्ड हेल्जर्स	34	47	60 (9)	69 (11)	85 (18)	—	42	—
लार्सन एंड टाउब्रो	—	—	—	—	—	114 (19)	—	109.0
गोएन्का	—	—	47 (15)	65 (13)	79 (19)	—	68	—
कस्तूरभाई लालभाई	13	22	34 (21)	51 (18)	79 (20)	109 (20)	124	27.3
मोदी	—	—	11 (55)	19	—	116 (18)	—	86.4
टी० वी० सुन्दरम् आयंगर	—	—	22 (27)	44 (22)	74 (21)	—	236	—
महिन्द्रा एंड मन्हिद्रा	1	12	20 (33)	38 (26)	72 (22)	144 (14)	260	73.2
पैरी	—	—	12 (52)	42 (24)	70 (23)	148 (13)	483	33.2
शीर्ष के 20 ग्रुपों का योग	648	1362	1823	2335	3688	5111	102.3	45.3
शीर्ष के 10 ग्रुपों का योग	594	1250	1367	1753	2759	3717	102.8	43.3

एम० आई० सी० = मोनोपलीज़ इन्क्वायरी कमीशन; आई०एल०पी० आई० सी० = इण्डस्ट्रियल लाइसेंसिंग पॉलिसीज़ इन्क्वायरी कमेटी; आर० के० एच० = आर० के० हजारी।

टिप्पणी : कोष्ठकों में दिए गए आंकड़े कोटि को दर्शाते हैं।

तालिका 111

क्रम संख्या	संस्था का नाम	परिसंपत्तियां करोड़ों रुपयों में 1972	1977	1972 से ऊपर 1977 में वृद्धि की प्रतिशतता
1.	बिड़ला	589.40	1070.20	81.6
2.	टाटा	641.93	1069.28	66.6
3.	मफतलाल	183.74	285.63	55.4
4.	जे० के० सिंहानिया	121.45	267.31	120.1
5.	थापर	136.16	215.92	58.6
6.	आई० सी० आई०	135.21	209.97	55.3
7.	सिंधिया	107.70	200.04	85.7
8.	आयल इंडिया	104.04	199.95	92.2
9.	भिवांडीवाला	45.91	189.44	312.6
10.	बांगुर	125.26	188.24	50.3
11.	लार्सन एंड टाउब्रो	79.03	185.91	135.3
12.	श्रीराम	120.77	179.77	48.9
13.	ए० सी० सी०	134.36	168.86	25.7
14.	किर्लोस्कर	86.46	160.96	86.2
15.	हिन्दुस्तान लीवर	77.87	143.59	84.4
16.	खटाऊ (बंबई)	75.44	138.82	84.0
17.	साराभाई	84.44	136.96	62.3
18.	वालचंद	99.47	132.55	33.5
19.	मैकनिल एंड मैगोर	64.80	132.81	104.6
20.	महिन्द्रा एंड महिन्द्रा	58.49	125.49	114.5
	योग	3071.98	5401.70	75.8

ऊपर दिए गए विवरण-पत्र से यह विदित होता है कि देश में 20 शीर्ष बड़ी औद्योगिक हाउसों या ग्रुपों की परिसंपत्तियों के कुल मूल्य के आंकड़े मोनोपलीज एंड रेस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसेज एक्ट द्वारा निकाल लिए गए हैं, और ये आंकड़े 1 अप्रैल, 1972 को 3,071.98 करोड़ रुपये से बढ़कर 31 मार्च, 1977 को 5,401.70 करोड़ रुपए हो गए हैं और इस प्रकार कुल मिलाकर 75.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

इस अवधि में बिड़ला ग्रुप ने 81.6 प्रतिशत की संवृद्धि-दर दिखाई जबकि टाटा ग्रुप ने केवल 66.6 प्रतिशत की संवृद्धि दर दिखाई। फिर भी संवृद्धि-दर के लिए सर्वोच्च सम्मान भिवांडीवाला (312.6 प्रतिशत) को दिया गया और उनका क्रम 20वें स्थान से उठाकर 9वें स्थान पर कर दिया गया। इस फर्म के बाद लार्सन एंड

टाउब्रो (135.3 प्रतिशत) ने अपने 15वें स्थान से उठकर 11वां स्थान प्राप्त कर लिया। जे० के० सिंहानिया ने भी 120.1 प्रतिशत की संवृद्धि-दर दिखाई और इसी अवधि में इस ग्रुप ने भी अपने 8वें स्थान से उठकर कोटि में चौथा स्थान प्राप्त कर लिया।

बिड़ला ग्रुप ने फिर औद्योगिक विश्व में 1978 में क्रमश: 1171.15 करोड़ रुपए और 98.81 करोड़ रुपए कुल परिसंपत्तियों और लाभों के अंतर्गत दिखाकर सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया।

11 मार्च, 1980 को लोकसभा में विधिमंत्री शिवशंकर ने जो आंकड़े दिए हैं उनके अनुसार टाटा ग्रुप का दूसरा स्थान है और उनकी परिसंपत्तियों में 1102.11 करोड़ रुपए तथा लाभों में 51.24 करोड़ रुपए की राशियां हैं।

1978 में 20 शीर्ष औद्योगिक हाउसों की परिसंपत्तियां, उत्पादन और लाभ इस प्रकार रहे :

तालिका 112

क्रम संख्या	औद्योगिक हाउस का नाम	परिसंपत्तियों का मूल्य	उत्पादन (करोड़ों रुपयों में)	पी० बी० टी०
1.	बिड़ला	1171.15	1374.56	98.81
2.	टाटा	1102.11	1367.60	51.24
3.	मफतलाल	317.86	475.41	39.07
4.	जे० के० सिंहानिया	299.57	318.12	13.50
5.	थापर	244.06	367.19	20.24
6.	आई० सी० आई०	228.73	308.87	26.38
7.	बांगुर	220.86	341.13	13.27
8.	श्रीराम	204.79	335.80	8.35
9.	आयल इण्डिया	203.24	423.39	15.67
10.	सिंधिया	202.81	92.60 (—)	7.77
11.	लार्सन एंड टाउब्रो	194.51	169.09	19.52
12.	ए० सी० सी०	186.62	183.02	15.63
13.	भिवांडीवाला	178.38	61.18 (—)	8.57
14.	किर्लोस्कर	176.25	199.10	9.11
15.	हिन्दुस्तान लीवर	157.15	370.20	28.32
16.	चाओगुली	149.96	40.23 (—)	2.73
17.	खटाऊ (बंबई)	143.12	235.02	13.71
18.	कस्तूरभाई लालभाई	140.00	202.98	22.25
19.	महिन्द्रा एंड महिन्द्रा	137.18	139.65	5.85
20.	वालचंद	135.70	135.50 (—)	1.70
	योग	5798.0		

कम्पनी-मामलों के विभाग ने समय-समय पर उन उपक्रमों की परिसम्पत्तियों के बारे में सूचनाएं संकलित की हैं, जो बड़े-बड़े औद्योगिक घरानों के हैं और जिनका रजिस्ट्रेशन मोनोपलीज़ एंड ट्रेड प्रेक्टिसेज़ एक्ट की धारा 26 के अन्तर्गत किया गया है। लेकिन मोनोपलीज़ एण्ड रेस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसेज़ एक्ट में दी गई 'उपक्रम' और 'अन्तर्संबंधित उपक्रमों, की परिभाषाओं ने ऐसी कई कम्पनियों को इस योग्य बना दिया है, जो टाटा बिड़ला, बांगुर, साहू जैन आदि बड़े-बड़े उन हाउसों की हैं जिन्हें मोनोपलीज़ इन्क्वायरीज कमीशन और इण्डस्ट्रियल लाइसेंसिंग पॉलिसी इन्क्वायरी कमेटी ने सूचीबद्ध किया है ताकि वे मोनोपलीज़ एंड रेस्ट्रिक्टव ट्रेड प्रेक्टिसेज़ एक्ट की सीमा से बाहर बने रहें। मोनोपलीज़ एण्ड रेस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसेज़ एक्ट की धारा 26 के अधीन रजिस्ट्रेशन का दायित्व स्वयं उपक्रम का ही है। यह उनके ही जांचने के लिए है कि क्या धारा 20 (क) अथवा 20(ख) के उपबंध उनके मामले के तथ्यों के बारे में लागू होते हैं और वे स्वयं धारा 26 के अन्तर्गत अपने को पंजीकृत करा लेते हैं, यदि उनकी राय में धारा 20(क) के उपबंध उन पर लागू होते हों। कम्पनियां पंजीकरण को बचाने के लिए इस अधिनियम के वर्तमान उपबंधों की कमियों और अनिर्णायक स्थितियों का पूरा लाभ उठाती हैं। न्यायिक निर्णयों के कारण यह संभव नहीं हो सका है कि मोनोपलीज़ एण्ड रेस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसेज़ एक्ट को निवेश करने वाली कम्पनियों पर लागू किया जाए। इस प्रकार आगे दिए गए आंकड़े केवल उन्हीं उपक्रमों की संख्या का उल्लेख करते हैं जो उन अलग-अलग हाउसों के हैं जिन्होंने वास्तव में मोनोपलीज़ एण्ड रेस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसेज़ एक्ट की धारा 26 के अंतर्गत पंजीकरण करा लिया है, लेकिन कम्पनियों की संख्या कम है जबकि 1966 में इण्डस्ट्रियल लाइसेंसिंग पालिसी इन्क्वायरी कमीशन और 1976 तथा 1977 में कम्पनियों के मामलों के विभाग द्वारा सूचीबद्ध की गई कम्पनियों की संख्या कहीं अधिक है :

तालिका 113

क्रम संख्या व्यवसाय हाउसों का नाम	आई० एल० पी० आई सी० (1966)	कंपनी मामलों का विभाग कंपनियों की संख्या 1971	1977
1	2	3	4
1. टाटा	60	60	32
2. बिड़ला	194	190	70
3. मफतलाल	20	20	14
4. माटिन बर्न	20	20	—
5. बांगुर	85	82	44
6. थापर	49	48	35
7. आई० सी० आई०	6	7	7

(क्रमशः)

1	2	3	4
8. ए० सी० सी०	5	5	5
9. श्रीराम	23	22	14
10. जे० के० सिंहानिया	44	41	28
11. सूरजमल नागरमल	101	97	9
12. वालचन्द	27	24	20
13. साराभाई	27	26	11
14. किलिक (कनोडिया)	17	17	13
15. मैकिनल एंड मैगोर	40	34	34
16. किर्लोस्कर	15	18	15
17. बजाज	21	22	29
18. साहू जैन	27	21	1
19. सिंधिया	8	7	3
20. बर्ड हेल्जर्स	57	55	26
21. लार्सन एंड टाउब्रो	—	10	10
22. गोएनका	56	50	5
23. कस्तूरभाई लालभाई	19	21	14
24. मोदी	11	9	9
25. टी० वी० एस० आयंगर	21	18	19
26. महिन्द्रा एंड महिन्द्रा	27	16	13
27. पैरी	10	10	9
योग	980	950	489

ऐसी स्थिति का मुख्य कारण इस तथ्य में निहित है कि प्रबंधकारिणी एजेन्सी पद्धति ने बहुत पहले जिस सम्पर्क-सूत्र की व्यवस्था की थी, उस सम्पर्क को अप्रैल, 1970 में कानून द्वारा समाप्त कर दिया गया और यह स्थिति मोनोपलीज़ एण्ड रेस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसेज़ एक्ट के प्रारंभ किए जाने से पूर्व हो गई थी जबकि मोनोपलीज़ एण्ड रेस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसेज़ एक्ट को अधिनियमित करने के बिल का प्रारूप तैयार किया गया था जब प्रबंधकारिणी एजेन्सी पद्धति लोकप्रिय हो चुकी थी।

सच्चर समिति ने इस अधिनियम में एक संशोधन का प्रस्ताव किया ताकि बचाव के तरीकों को हटाया जा सके और कम्पनियों को मोनोपलीज़ एण्ड रेस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसेज़ एक्ट की परिधि में लाया जा सके लेकिन अभी तक सरकार ने इस सिफारिश पर कोई कार्यवाही नहीं की है।

इस स्थिति की दृष्टि से मोनोपलीज़ एण्ड रेस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसेज़ एक्ट के अधीन पंजीकरणों के आधार पर कम्पनी मामलों के विभाग के संकलनों को देखना

सही नहीं है ताकि यह मान लिया जाए कि प्रत्येक हाउस की सही स्थिति बताई गई है क्योंकि इसका कारण यह है कि एक हाउस की कई कम्पनियां होती हैं जिन्होंने धारा 26 के अन्तर्गत पंजीकरण नहीं कराया है।

यह भी उल्लेखनीय है कि कई ऐसे उपक्रम समयान्तराल में बदल जाते हैं जो मोनोपलीज़ एण्ड रेस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसेज़ एक्ट के रजिस्टर में शामिल हैं, क्योंकि उनके नए पंजीकरण हो जाते हैं और पुराने पंजीकरण रद्द कर दिए जाते हैं, इसका अर्थ यह है कि उपक्रमों की सूची पर किसी एक विशेष समय में आंकड़े दर्शाने के लिए विचार किया जाए तो वह सूची भी समय के साथ परिवर्तित हो जाती है।

दत्त समिति की रिपोर्ट में यह बताया गया है कि 20 बड़े हाउसों ने अनुपात से अलग कहीं बड़ा भाग जारी किए गए कई लाइसेंस और लाइसेंस-शुदा निवेश के मूल्य में प्राप्त कर लिया है। शीर्ष 20 हाउसों के भाग में जारी किए गए लाइसेंसों की संख्या 20 प्रतिशत रही परन्तु लाइसेंस-शुदा निवेश का शेयर 41 प्रतिशत रहा। इसके अलावा जबकि 20 बड़े हाउसों के 20 प्रतिशत आवेदन-पत्र अस्वीकृत कर दिए गए, इसकी तुलना में छोटे हाउसों के 66 प्रतिशत आवेदन-पत्र अस्वीकृत किए गए।

बड़े-बड़े हाउसों में जारी किए गए लाइसेंसों के मामले पर कई प्रकार से विशेष सहानुभूति दिखाई गई है। ये प्रकार इस प्रकार हैं :

(i) शीघ्र सूचना : कुछ विशेष पार्टियों को सूचित कर दिया जाता है और कतिपय परियोजनाओं के बारे में उनसे पूर्व ही आग्रह किया जाता है तथा उनसे कहा जाता है कि वे तदनुसार आवेदन-पत्र प्रस्तुत करें क्योंकि परियोजना का अनुमोदन पहले ही मिल चुका है (यथा—बिड़ला की एलमोनियम परियोजना)।

(ii) किन्हीं विशेष आवेदनकर्ताओं के लिए उपयुक्त किन्हीं विशेष उत्पादों के लिए नवीन क्षमता के लाइसेंस दिए जाने के 'निषेध' उठा लिए गए हैं जो विशेषतया बड़े-बड़े हाउसों (यथा—श्री राम कैलशियम कार्बिड प्रोजेक्ट) के स्वामित्व में हैं।

(iii) शीघ्र निपटान : जबकि कई आवेदन-पत्रों के निपटान में महीने और वर्ष लग जाते हैं, पक्षपात की जाने वाली कतिपय पार्टियों के आवेदन-पत्र 'उच्च प्राधिकारियों' के निश्चित निर्देशों के अनुसार अधिक तीव्रता से निपटा दिए जाते हैं। एक विशेष उल्लेखनीय उदाहरण यह है कि एक विदेशी पार्टी (प्योर ड्रिंक्स) को सॉफ्ट ड्रिंक्स तैयार करने के लिए केवल एक दिन में लाइसेंस जारी कर दिया गया।

(iv) अपर्याप्त छानबीन : पर्याप्त छानबीन किए बिना कतिपय उत्पादों के लिए कुछ बड़े-बड़े हाउसों को लाइसेंस जारी किए गए। (उदाहरणार्थ, बिड़ला की रिओन परियोजना कस्तूरभाई की सुपर-फास्फोट परियोजना)।

(v) 'फाइल पर निर्णय' अर्थात् ऐसे निर्णय जो लाइसेंसिंग समिति ने सामान्य प्रक्रिया से बाहर लिए हैं। इस प्रकार बड़े-बड़े हाउसों के लगभग 50 आवेदन-पत्रों पर सहानुभूतिपूर्वक निर्णय लिए गए (उदाहरणार्थ, बांगुर के तार-उत्पादन की परियोजनाएं)।

सहानुभूतिपूर्वक किए गए मामलों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि बड़े-बड़े व्यापारिक हाउसों ने लाइसेंस लिए जाने का प्रतिबंध निजी निवेश करने वाले अपेक्षाकृत कम अधिकार-प्राप्त प्रतियोगी हाउसों की लाइसेंस की जाने वाली क्षमता के पूर्वक्रम और उसकी समाप्ति अपने लाभ के लिए कर ली है। उन्होंने एक ही उत्पाद के लिए अनेक और बार-बार आवेदन-पत्र दिए हैं तथा अनुचित लम्बी अवधि के लिए प्रदत्त लाइसेंसों को कार्यान्वित नहीं किया है। अतः इस प्रकार उन्होंने अपने उद्देश्य की पूर्ति की है। पहले तरीके से यह बात सुनिश्चित हो जाती है कि उनके पास लाइसेंस प्राप्त करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक अवसर हैं जबकि इनकी तुलना में उन हाउसों को कम अवसर मिलते हैं जो केवल किसी विशेष उत्पाद के लिए एक ही आवेदन-पत्र देते हैं। दूसरा तरीका यह सुनिश्चित करता है कि यदि उन्हें एक बार लाइसेंस प्राप्त हो गया तो जब तक वे अपने लाइसेंस को कार्यान्वित नहीं करते, उस समय तक अन्य प्रतियोगी के आवेदन-पत्र को इस आधार पर रद्द कर दिया जायेगा कि 'स्थान खाली नहीं है।' यहां तक टाटा हाउस ने भी छः लाइसेंसों के कार्यान्वयन को तीन से छः वर्षों से अधिक अवधि में समाप्त नहीं किया जबकि वह अन्य बड़े-बड़े हाउसों में से अपने को अलग समझते हैं। बड़े-बड़े हाउस नए उत्पादकों को व्यापार क्षेत्र में नहीं आने देते क्योंकि वे उस क्षमता से अधिक उत्पादन कर लेते हैं जिसकी उन्हें जारी किए गए लाइसेंस में अनुमति दी गई है।

23 जुलाई, 1980 को लोकसभा में उद्योग राज्य मंत्री ने अपने औद्योगिक नीति संबंधी वक्तव्य में यह घोषणा की कि इण्डस्ट्रीज़ (डेवलपमैंट एण्ड रैगुलेशन) एक्ट, 1951 के उल्लंघन में भारतीय उद्योगपतियों द्वारा पहले ही स्थापित अधिक औद्योगिक क्षमताओं को मानने के लिए सरकार का इरादा है। उन्होंने कहा कि सरकार का यह निर्णय इस भावना से प्रेरित है कि मूल लाइसेंसों में अंकित उत्पादन-क्षमता, यूनिटों की पूर्ण उत्पादन-क्षमता को इंगति नहीं करती। उन्होंने जोरदार शब्दों में कहा कि "लोक-हित की दृष्टि से उत्पादन बढ़ाने के लिए लाइसेंसिंग प्रक्रियाओं अथवा एक ही स्थान पर बने रहने की कड़ी नीति को मार्ग का रोड़ा नहीं बनने दिया जाएगा। उन्होंने यह भी कहा कि कतिपय उद्योगों तक ही नियमित किए जाने की प्रक्रिया को सीमित किया जाएगा। फिर भी सरकार ने अभी तक कोई भी ऐसी कसौटी नहीं बनाई है जो उन उद्योगों अथवा यूनिटों के चयन में काम में लाई जानी है जिनसे प्रस्तावित शिथिलता से लाभ होगा।

भारतीय लोक प्रशासन संस्था, नई दिल्ली की ओर से एस० के० गोपाल ने जो अध्ययन किया उसके अनुसार भारत में औद्योगिक लाइसेंसिंग पद्धति को एक ऐसा

महत्वपूर्ण माध्यम समझा गया है ताकि पंचवर्षीय योजनाओं में दी गई कुल संरचना के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के औद्योगिक विकास को नियमित किया जाए। इस लाइसेंसिंग पद्धति के अपनाने के समय से सभी बड़े औद्योगिक निवेशों (नए उपक्रम, पर्याप्त प्रसार आदि) के लिए सरकार की पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता होती है। इसके अलावा कतिपय उद्योगों के लिए औद्योगिक लाइसेंसिंग की आवश्यकता होती है चाहे उसके निवेश की मात्रा कितनी ही क्यों न हो। यदि संसाधन के अभाव से ग्रस्त देश सामाजिक-आर्थिक विकास प्राप्त करने का इरादा करता है तो वहां की लाइसेंसिंग पद्धति इस प्रकार की बनानी चाहिए जिससे प्रमुखतया दो मूल प्रयोजनों के लिए नवीन निवेश नियमित किए जाएं। ये दो मूल प्रयोजन इस प्रकार हैं: (1) यह सुनिश्चित करना कि सीमित निवेश योग्य राष्ट्रीय संसाधन (आन्तरिक और विदेशी विनिमय) योजना-इतर अथवा न्यून प्राथमिकताओं के उद्योगों की ओर नहीं लगाए जाते हैं और (2) नई औद्योगिक क्षमताओं के समन्वित स्थापनाओं की खोज करना ताकि राष्ट्रीय संसाधनों के दोहरेपन और बेकार उपयोग को रोका जा सके।

निम्नांकित तालिका में निहित कंपनियों के एसोसिएशन के प्रकार अथवा वर्ग के अनुसार अतिरिक्त लगाई गई क्षमताओं का विवरण दिखाया गया है। अतिरिक्त क्षमता के अधिकांश मामले बहुराष्ट्रिक निगमों और भारतीय एकाधिकार हाउसों के हैं। उनमें लगभग दो-तिहाई भाग अतिरिक्त क्षमताओं के दिखाए गए हैं।

तालिका 114

कंपनियों के एसोसिएशन की प्रकृति के अनुसार अतिरिक्त लगाई गई क्षमता के मामलों का वितरण

क्रम संख्या	कम्पनियों का प्रकार	25 प्रतिशत तक	25.0-25.9	26.0-49.0	50.0-99.0	100.0 और अधिक	योग
1.	बहुराष्ट्रिक	45	27	33	26	69	200
2.	भारतीय एकाधिकार हाउस	77	20	24	17	31	169
3.	अन्य	70	19	35	34	38	196
	योग	192	66	92	77	138	565

सबसे बड़ी संख्या के मामले और विशेषकर वे संस्थाएं जिनमें 25 प्रतिशत से अधिक अतिरिक्त लगाई गई क्षमता है, बहुराष्ट्रिक निगमों के हैं। विदेशी विनियम अधिनियम (फौरन एक्सचेंज रैगुलेशन एक्ट) की कम्पनियों (जो 1979 में 492 थीं) की कुल संख्या की पृष्ठभूमि में इस तथ्य की समीक्षा करने की आवश्यकता है। इसकी तुलना में मोनोपलीज़ एण्ड रेस्टिक्टिव ट्रेड प्रेक्टिसिज़ एक्ट और दत्त समिति के अनुसार भारतीय एकाधिकार हाउसों की कुल सूचीबद्ध कम्पनियों की संख्या लगभग

1500 होगी। औद्योगिक कार्यों में लगे बहुराष्ट्रिक निगमों (फॉरेन एक्सचेंज रैगुलेशन एक्ट कम्पनियों) की कुल संख्या बहुत कम है । उदाहरण के लिए 1978 में विदेशी कम्पनियों की अनुषंगी कम्पनियों की संख्या केवल 204 थी । जहां तक आकार का प्रश्न है वहां लगभग 60 बहुराष्ट्रिक कम्पनियां थीं जिनका राष्ट्रीय दृष्टि से विशेष महत्व समझा जा सकता है, इसलिए यह तथ्य है कि अतिरिक्त क्षमता की अधिकांश कम्पनियां बहुराष्ट्रिक कम्पनियां ही हैं। इससे यह पता चलता है कि सामान्य रूप से विदेशी कम्पनियों ने भारतीय नियमन कानून के प्रति बहुत कम आदर दिखाया है। इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि विदेशी निजी उद्योग केवल ऐसे औद्योगिक कार्यों के चलाने के लिए ही होते हैं जहां देशी प्रौद्योगिकी उपलब्ध नहीं है, अतः भारत में बहुराष्ट्रिक कम्पनियां अर्थव्यवस्था में एकाधिकार की स्थिति का निरंतर लाभ उठाती हैं। इस प्रकार यह तथ्य कि अब बहुराष्ट्रिक कम्पनियां नई औद्योगिक नीति से प्रमुख रूप से लाभ उठाएंगी, मंत्रालय और राष्ट्रीय स्तर पर किए जाने वाले निर्णयों की प्रक्रियाओं के संबंध में विविध प्रकार के गंभीर मामलों की ओर ध्यान आकर्षित करता है। 18 नवम्बर, 1980 को सरकार ने लोकसभा के एक प्रश्न के उत्तर में यह बताया कि जनवरी और सितम्बर 1980 की अवधि में औषधियों के निर्माण के लिए पहले ही पांच आशय-पत्रों पर स्वीकृति दे दी गई है। ये कम्पनियां इस प्रकार हैं: एबट लेब्स प्राइवेट लिमिटेड, सी० आई० बी० ए०, गीगी आफ़ इंडिया लिमिटेड, फीज़र लिमिटेड और ई० मर्क लिमिटेड (दो) ।

जहां तक भारतीय एकाधिकार हाउसों का संबंध है, सबसे अधिक उल्लेखनीय मामला बिड़ला का है और इस संबंध में 46 उदाहरण हैं। इसके बाद दूसरा स्थान टाटा का है जिनके 8 उत्पाद उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किए जा सकते हैं और इसके बाद बांगुर और वालचन्द के हाउस हैं जिनमें से प्रत्येक हाउस के 7-7 मामले प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इस दृष्टि से कि बिड़ला ने सबसे अधिक विशेष स्थान प्राप्त किया है, यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि दत्त समिति की टिप्पणी को फिर से दोहरा दिया जाए जो इस हाउस के बारे में लोकसभा में प्रस्तुत की गई थी :

> "....बीस बड़े औद्योगिक हाउसों ने इतना भाग प्राप्त कर लिया जो निजी कारपोरेट क्षेत्रक में अन्यों की अपेक्षा कुछ मामलों में अपेक्षाकृत थोड़ा ही अधिक था लेकिन चाहे अलग-अलग उत्पादों अथवा अलग-अलग बड़े हाउसों या बड़ी कम्पनियों के संबंध में ही देखा जाए तो सबसे अधिक अनुपात कुछ मामलों में बेतुके दिखाई दिए और इन सबमें सबसे अधिक उल्लेखनीय बिड़ला हाउस है।" (जोड़ दिया गया)

अतिरिक्त क्षमता वाले उदाहरणों के संबंध में यह तथ्यात्मक स्थिति है जो वर्ष 1978 और 1979 में विद्यमान थी। 1980 के लिए उन 34 उद्योगों की क्षमता का प्रसार आगामी अगस्त में संसद द्वारा स्वीकृत कर दिया गया था जिनकी अनुमति बजट के बाद दी गई थी। इनकी संख्या मूल लाइसेंस, दी गई या रजिस्टर की गई,

संख्या का 156 प्रतिशत है। इनमें से 19 उद्योगों को 5 वर्षों की अवधि में अपनी वर्तमान लाइसेंस की गई अथवा रजिस्टर की गई क्षमता से अधिक 25 प्रतिशत स्वतः संवृद्धि की सुविधा की अनुमति दी गई। इसके निहितार्थ स्पष्ट ही हैं।

अब यह नीति-निर्माताओं के निर्णय करने के लिए है कि क्या वे नियमित करने की उस नीति को स्वीकार करना चाहेंगे जो अन्य राष्ट्रीय नीति-उद्देश्यों, यथा (i) छोटे पैमाने के उद्योगों की सुरक्षा और उन्नति, (ii) देसी प्रौद्योगिकी और उद्यम के विकास, (iii) कुछ निजी हाथों में औद्योगिक उत्पादन के केन्द्रीकरण से बचाव, और (iv) प्रादेशिक असमानताओं को दूर करने की कीमत पर किया जाना होगा।

बड़े-बड़े व्यापारिक हाउसों ने देसी प्रौद्योगिकी के विकास के लिए कोई भी उल्लेखनीय प्रयास नहीं किए हैं जबकि उनके हाथ में विशाल मानवीय और अन्य संसाधन हैं जैसा कि पाठक को आगामी उप-अध्याय में देखने को मिलेगा कि उनकी संवृद्धि का अधिकांश भाग विदेशी प्रौद्योगिकी और पूंजी के आयात पर ही निर्भर करता है। बड़े उद्योगों ने भी इस बात के बहुत ही कम प्रयत्न किए हैं कि अपने आप ही उन बड़ी परियोजनाओं को वित्तपोषित करने के लिए पूंजी बढ़ा ली जाए जो उन्होंने स्थापित की हैं। उनकी परियोजना लागत का लगभग 50 प्रतिशत भाग, सार्वजनिक क्षेत्रक की वित्तीय संस्थाओं द्वारा वित्तपोषित किया जाता है। संस्थागत वित्त का अधिकांश भाग बड़े-बड़े व्यापारिक हाउसों को दिया गया है। इस संबंध में भी वे अपने छोटे और मध्यम आकार के प्रतियोगियों से आगे हैं।

बड़े-बड़े व्यापारिक हाउसों के प्रलोभन और झांसापट्टी का यही रिकार्ड है और इस प्रकार श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में भारत सरकार की असफलता का भी रिकार्ड है, इसके बावजूद कि पंडित नेहरू ने अपने निधन के छः महीने पूर्व एक वक्तव्य दिया था। उन्होंने 11 दिसम्बर, 1963 को लोकसभा में यह स्वीकार किया था कि योजना से सम्पत्ति कुछ ही हाथों में संकेंद्रित नहीं होनी चाहिए लेकिन सरकार और योजना आयोग दोनों ही इस संकेंद्रण को बचाने के लिए प्रभावकारी उपाय करने में असफल हो गए हैं। उन्होंने इस बात का आश्वासन दिया कि भविष्य में अधिक प्रभावकारी ढंग अपनाए जाएंगे लेकिन उस समय तक बहुत देर हो चुकी थी। उनके वास्तविक शब्द इस प्रकार हैं :

> "मेरा यह विचार है कि यह अत्यंत आपत्तिजनक है और इससे बचना भी चाहिए कि आर्थिक शक्ति लोगों के छोटे-छोटे दलों के हाथों में ही पहुंच जाए, चाहे वे दल कितने ही योग्य व भले क्यों न हों। व्यापक रूप से यही हमारा दृष्टिकोण है। यदि आप इस दृष्टिकोण को योजना आयोग के सामने रखें तो वे शीघ्र ही निजी क्षेत्रक और सार्वजनिक क्षेत्रक दोनों में ही उत्पादन के प्रश्न और संकेंद्रण बचाने आदि के प्रश्नों के हल ढूंढेंगे। अभी तक उन्होंने ऐसा अधिक प्रभावकारी तरीका नहीं अपनाया है, इसे मैं स्वीकार करूंगा। मुझे

आशा है कि वे भविष्य में अधिक प्रभावकारी ढंग से ऐसा करेंगे और हमारी सरकार भी अधिक प्रभावकारी ढंग से ऐसा करेगी, बावजूद इसके कि माननीय विरोधी सदस्य इस संबंध में कठिनाइयां पैदा करते रहें।"

इन सब बातों की जानकारी हो जाने के बाद यह बिल्कुल भी आश्चर्यजनक नहीं है कि बड़े-बड़े व्यापारिक हाउसों और उनके द्वारा नियंत्रित समाचार-पत्रों ने आपातकालीन स्थिति के दौरान श्रीमती गांधी के समर्थन के लिए क्या नहीं किया। वे इस बात को अच्छी तरह से जानते थे कि आपातकालीन स्थिति उनके उन सभी लाभों को द्विगुणित कर देगी जो वे उठा रहे थे। इसका अर्थ यह था कि न तो कोई संसद होगी और न कोई विरोधी सदस्य होंगे जो वास्तविक शासकों के साथ किए गए उनके सम्पर्कों में बाधा डालें या ताक-झांक कर सकें। कोई भी ट्रेड यूनियनें नहीं होंगी जो उनके लाभों को कम कर सकें और उनके वफादार प्रबंधकों को चिढ़ाएं। और यदि श्रीमती गांधी पददलित लोगों और लोकतंत्र के नाम पर उन्हें इन लाभों को प्रदत्त करें तो वस्तुतः उन्हें कुछ भी नहीं गंवाना था अपितु आपातकालीन स्थिति से काफी लाभ उठाना था। उनके लिए आपातकालीन स्थिति के लाभ कहीं अधिक थे जबकि उनके कुछेक बंधु व्यापारियों,यथा—गोयनका या वीरेन शाह ने बलिदान किया था। फिर भी कुछ अक्खड़ व्यक्तियों के हितों को, बड़े व्यापारिक हाउसों को एक वर्ग के रूप में उनके हितों से आगे बढ़ने की अनुमति नहीं दी गई।

ए० एन० ओझा ने यह बताया है कि ऐतिहासिक रूप से देखते हुए जर्मनी और जापान के बड़े-बड़े व्यापारिक हाउस संसदीय लोकतंत्र को नष्ट करने के लिए कारण सिद्ध हुए हैं, यहां तक कि अमरीका में भी 'सबसे बड़ा' लोकतंत्र होते हुए भी बड़े-बड़े व्यापारिक हाउसों ने निकसन की सत्तापूर्ण राजनीति का समर्थन किया है। प्रेसीडेंट आइजन हावर ने 'सैनिक औद्योगिक कॉम्प्लैक्स' के खतरों के बारे में लोगों को निरर्थक ही चेतावनी नहीं दी थी। भारत में आपातकालीन स्थिति के समय बड़े-बड़े व्यापारिक हाउसों की भूमिका भी यह प्रकट करती है कि इस नियम में कोई अपवाद नहीं था।

15

बढ़ती हुई आय की असमानताएं

औरंगजेब के दरबार के फ्रांसीसी डॉक्टर फ्रैंकूज़ बर्नियर एक विदेशी पर्यवेक्षक थे। उन्होंने लिखा है कि, "दिल्ली में कोई भी मध्यवर्ती स्थिति नहीं है। किसी आदमी को या तो सर्वोच्च पद पर रहना चाहिए अथवा दयनीय दशा में गुजारा करना चाहिए।" आज यह सामाजिक व्याधि समस्त देश में फैली हुई है जबकि राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त किए हुए 30 वर्ष से अधिक समय बीत चुका है। चौथी पंचवर्षीय योजना में दिए गए तथ्यों का उपयोग करते हुए सरदार पटेल जिस निष्कर्ष पर पहुंचे वह इस प्रकार है :

> "हमारी जनसंख्या का 2/5 भाग राष्ट्रीय आय का लगभग 16 प्रतिशत प्राप्त करता है। यदि अन्य 10 प्रतिशत समूह को भी इसमें जोड़ दिया जाए तो हमारी कुल जनसंख्या का आधा भाग राष्ट्रीय आय के 21 प्रतिशत से कुछ ही अधिक प्राप्त करता है।
>
> "इसकी तीव्र तुलना में शीर्ष 5 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 22 प्रतिशत भाग ले लेते हैं, जो हमारी जनसंख्या के कुल आधे लोगों को प्राप्त आय से कुछ अधिक है।"

यदि कृषीतर क्षेत्रक की आय असमानताओं पर ही कहा जाए तो यह तथ्य है कि बंबई में 6,000 से अधिक ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी 1979-80 के वित्तीय वर्ष में प्रति व्यक्ति 1,00,000 रुपए से अधिक आय पर कर लगाया गया था लेकिन इन लोगों से भी कहीं अधिक ऐसे व्यक्ति भी हैं जिन्होंने कर बचाया है। इसी शहर में ही अन्य हजारों ऐसे व्यक्ति भी हैं जिन्होंने अपने फ्लैटों की खरीद के लिए काले धन में से 1 लाख से अधिक राशि का भुगतान किया है और ये 'पांच स्टार' होटल में एक कमरे को किराए पर लेने के लिए एक दिन के लिए 1,000 रुपए या इससे अधिक राशि भुगतान करने के लिए भी तैयार हैं। इसकी तुलना में हजारों ही क्या लाखों लोग ऐसे हैं जो सड़कों पर रहते हैं, पटरियों पर सोते हैं और उनके पास फटे-पुराने

चिथड़ों के अलावा कुछ भी नहीं होता। हमारी कुल जनसंख्या के 50 प्रतिशत लोग 365 दिनों के पूरे वर्ष में भी 1,000 रुपए भी नहीं कमा पाते।

भारी अथवा पूंजी प्रधान उद्योग ने, चाहे वे निजी क्षेत्रक में हों अथवा सार्वजनिक क्षेत्रक में हों, दोहरी अर्थव्यवस्था उत्पन्न कर दी है जिसके फलस्वरूप गरीबी, बेरोजगारी और निष्क्रियता के भीतरी प्रदेश में समृद्धि के कुछेक क्षेत्रों का ही निर्माण हो पाया है। इससे शीर्ष के लोगों के हाथ में सम्पत्ति एकत्रित हो गई है और लाखों लोग बेरोजगार तथा कम रोजगार पाने वाले बन गए हैं जिससे निम्न स्तर पर गरीबी बढ़ी है। गरीबी हटाओ की घोषणाओं के बावजूद कांग्रेस की नीतियों के फलस्वरूप एकाधिकार हाउसों का उदय हुआ है और इन हाउसों में बराबर पूंजी बढ़ती जा रही है और लाभ द्विगुणित होते जाते हैं जिसकी तुलना में कई करोड़ लोग ऐसे हैं जो आधा पेट भोजन करते हैं, फटे-पुराने कपड़े पहनते हैं और देहातों में झोंपड़ियां बनाकर रहते हैं तथा शहरों में गंदी बस्तियों में अपना गुजर करते हैं। जबकि एक ओर हजारों लोग विलासिता में अपना जीवन बिताते हैं और वे यह नहीं समझते कि उन्हें जो अपार धन मिला है अथवा उन्होंने गलत तरीकों से जो लाभ उठाए हैं और उनका वे किस प्रकार प्रयोग करें वहीं दूसरी ओर लाखों लोग ऐसे हैं जो रोटी के ग्रास के अभाव में भूखों मरते हैं।

भारत जैसे कृषक प्रधान अर्थव्यवस्थाओं के देशों में यह विचार किया जाता है कि औद्योगिक क्षेत्रों के स्थिर प्रसार से समृद्धि प्राप्त की जा सकती है लेकिन जब तक ये औद्योगिक क्षेत्र अधिक जनसंख्या को अपने में समेट न लें तथा समाज के सभी स्तरों पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद की संवृद्धि की ऊंची दरों के लाभ परिस्रवण और समयोपरि-पारिश्रमिक लोगों तक न पहुंचा दिए जाएं तब तक यह विचार सिद्धांततः अविश्वस्त है क्योंकि व्यावहारिक रूप से यह असाध्य सिद्ध हुआ है। किसी भी देश में मजदूरों की अधिकता के साथ पूंजी प्रधान तकनीकों के अपनाए जाने से समृद्धियों के कुछ द्वीप बन जाते हैं जो शहरों में दिखाई देते हैं और जिनके चारों ओर गंदी बस्तियों और गांवों के रूप में दरिद्रता से भरा विशाल समुद्र फैला होता है।

इसके कारण खोजना कोई कठिन काम नहीं है, कि किस प्रकार पूंजी प्रधान उद्योग के कारण कुछ ही हाथों में संपत्ति संकेंद्रित हो गई है। पाठक को यह पहले ही विदित हो चुका है कि छः वर्षों की अवधि में ही 20 शीर्ष ग्रुपों अथवा बड़े-बड़े औद्योगिक हाउसों की परिसंपत्तियां 1972 में 3,072 करोड़ रुपए से बढ़कर 1978 में 5,798 करोड़ रुपए हो गई हैं और इसी अवधि में बिड़ला की परिसंपत्तियां 689 करोड़ रुपए से बढ़कर 1,171 करोड़ रुपए हो गई हैं और टाटा की परिसंपत्तियां 642 करोड़ रुपए से बढ़कर 1,102 करोड़ रुपए हो गई हैं। 1951 में उनके पास क्रमशः 153 करोड़ और 116 करोड़ रुपए की परिसंपत्तियां थीं। इसके अलावा 1978 में बिड़ला की कर से पूर्व लाभ की राशि 99.81 करोड़ रुपए थी और टाटा के लाभ की राशि 51.25 करोड़ रुपए थी।

इसके अलावा चूंकि बड़े और प्रौद्योगिकी के आधार पर जटिल उद्यमों को

चलाने के लिए कार्य-कुशलता की आवश्यकता होती है अतः प्रबंधकों और इंजीनियरों को अधिक पारिश्रमिक दिए जाते हैं। दूसरे, यदि अपेक्षाकृत अधिक पूंजी प्रधान उद्योग होंगे तो उनमें अपेक्षाकृत कम मजदूर काम पर लगाए जायेंगे और इसके फलस्वरूप उसकी उत्पादकता भी अपेक्षाकृत अधिक होगी। उन मजदूरों की कम संख्या और एक छोटे क्षेत्र में उनके काम करने से यह सरल हो जाता है कि वे मजदूर एक हो सकते हैं और उत्पादों में अपने लिए अधिक शेयर मांग सकते हैं। नियोक्ता चाहे वे सरकार अथवा निजी नागरिक हों, मजदूरी बढ़ा सकते हैं क्योंकि उद्यमों की उत्पादकता बढ़ जाती है और यदि काम रुक जाय तो उत्पाद में भारी कमी हो जाती है और उन्हें बहुत हानि उठानी पड़ती है। अतः इस दृष्टि से भी मजदूरी बढ़ा दी जाती है।

सरकारी नौकरियां भी पीछे नहीं रह पातीं। जो तर्क औद्योगिक कामगारों और निजी उद्यमों के कार्यकर्त्ताओं के लिए दिए जाते हैं, वे सरकारी सेवाओं के लिए भी लागू किए जा सकते हैं। इसके अलावा उनका विधान-मंडल के चुनावों में भी भारी दबदबा रहता है। इसलिए उन्होंने अपनी आवाज उठाई और उनकी फौरन ही सुनवाई की गई। वेतन-वृद्धियां और महंगाई भत्ते वार्षिक रूप से और कभी-कभी तिमाही रूप से बढ़ गए।

यथार्थ से कहीं दूर किसी ट्रिब्यूनल अथवा समझौते के पंचाट द्वारा समर्थित वतन संरचना की असमानता स्वतः स्पष्ट हो जाएगी, यदि उद्योग और अन्य क्षेत्रों की आय की तुलना की जाय। किसी भी संगठित उद्योग में एक मेहतर को प्रतिमास 400 रुपए की मजदूरी मिलती है, एक ड्राइवर को 1,200 रुपए और एक क्लर्क को 750 रुपए से लेकर 900 रुपए के बीच में कोई राशि दी जाती है। बंबई और अन्य शहरों में छोटे वर्ग के औद्योगिक कामगार प्रतिमास 360 रुपए से 1,400 रुपए कमा लेते हैं। आज बड़े पैमाने के उद्योग में लगा ट्रक ड्राइवर एक कॉलिज के प्रवक्ता की अपेक्षा काफी कमा लेता है। किसी भी सरकारी स्वामित्व के वाणिज्यिक बैंक के चपरासी की कुल मासिक परिलब्धियां प्रतिमास 450 रुपए से 600 रुपए तक हो सकती हैं और एक क्लर्क को प्रतिमास 550 रुपए से लेकर 1,300 रुपए की राशि भुगतान की जाती है। इसके विपरीत, डबल ग्रेजुएट का मासिक वेतन लगभग 450 रुपए होता है और विश्वविद्यालय का अर्हता-प्राप्त अध्यापक प्रतिमास 650 रुपए कमा पाता है।

आगे एक तालिका दी गई है जिसे भूतलिंगम कमेटी की रिपोर्ट से लिया गया है जिसमें विभिन्न कृषीतर उद्यमों में—चाहे वे सार्वजनिक क्षेत्रक में हों, अथवा निजी क्षेत्रक में हों, काम पर लगाए गए नौकरों अथवा कामगारों की प्रतिमास प्रति व्यक्ति आय के बीच की असमानताओं को दिखाया गया है।

तालिका 115

चुने हुए उद्योगों के क्षेत्रकों में औसत मासिक आय में असमानताएं (1975-76)

क्रम संख्या	उद्योग/क्षेत्रक		रोजगार (हजारों में)		मासिक औसत आय (रुपयों में)	
1	2		3		4	
1.	खाद्य पदार्थ	मौसमी उद्योग	1045		184	पहले तीन मामलों में कुछ ही महीनों की अर्जित आय को 12 महीनों में फैला लिया गया है।
2.	नशीले पदार्थ, तम्बाकू और तम्बाकू के पदार्थ		224		196	
3.	चीनी		301		148	
4.	गैर-धातु खनिज पदार्थ		291		333	
5.	जूट, सन और कपड़ा		263		416	
6.	जूट की मिलें		258		421	
7.	धातु-उत्पाद		175		434	
8.	सूती कपड़ा*		1071		442	
9.	ऊन, सिल्क और कृत्रिम रेशे का कपड़ा		169		443	
10.	कागज और कागज के उत्पाद, मुद्रण और प्रकाशन		234		479	
11.	रेलवे		—	(1470)	—	(527)
12.	सूती कपड़े की मिलें*		839		528	
13.	कागज की मिलें		77		534	
14.	खनिज और धातु, कोयला		—	(623)	—	(562)
15.	गैर-बिजली मशीनरी		342		567	
16.	रबड़, प्लास्टिक, पैट्रोलियम और कोयले के उत्पाद		137		626	
17.	परिवहन-उपकरण और हिस्से		356	(89)	640	(909)
18.	मूल धातुएं और मिश्रित धातुएं		494		677	
19.	रसायन और रसायन-उत्पाद		357		678	
20.	बिजली की मशीनें		261		690	
21.	लोहा और इस्पात		252	(162)	822	(831)

(क्रमशः)

1		2	3
22.	भारी इंजीनियरिंग	— (123)	— (823)
23.	वित्तीय सेवाएं	— (01)	— (915)
24.	बैंकिंग	— (341)	— (1014)
25.	बीमा	— (81)	— (1214)
26.	पैट्रोलियम	— (47)	— (1218)
27.	परिवहन सेवाएं	— (42)	— (1555)

स्रोत : (i) केन्द्रीय सरकार की औद्योगिक और वाणिज्यिक उपक्रमों के कार्य की वार्षिक रिपोर्ट, 1976-77, खण्ड I

(ii) इण्डियन रेलवेज इयर बुक, 1976-77.

(iii) उद्योगों का वार्षिक सर्वेक्षण, 1975-76.

* सूती मिलों को शामिल करते हुए सूती कपड़ों के सभी प्रकार के कपड़ों के निर्माण करने से संबंधित है। क्रम संख्या 8 का संबंध उद्योग ग्रुप की कुल मिलाकर स्थिति को दर्शाता है जबकि क्रम संख्या 12 केवल मिल क्षेत्रक तक ही सीमित रह गया है।

टिप्पणी : कोष्ठकों में दिए गए आंकड़े केवल सार्वजनिक क्षेत्रक से ही संबंधित हैं।

भारत के जीवन बीमा निगम के वर्ग III और वर्ग IV के कर्मचारियों के लिए वेतन तथा महंगाई भत्ते की कोई सीमा नहीं है। अगस्त, 1977 से वर्ग III के कर्मचारियों को उनके मूल वेतन पर 162 प्रतिशत महंगाई भत्ता दिया जा रहा है और वर्ग IV के कर्मचारियों को उनके मूल वेतन का 216 प्रतिशत की दर से महंगाई भत्ता दिया जाता है। उदाहरण के लिए 1 अगस्त, 1977 को आम वेतन की दृष्टि से जीवन बीमा निगम के वेतनों का तुलनात्मक विवरण दिया जा रहा है।

तालिका 116

वेतन	तृतीय श्रेणी		प्रथम श्रेणी	
	महगाई	योग	महंगाई	योग
रुपए	रुपए	रुपए	रुपए	रुपए
530	859	1389	710	1240
610	988	1598	870	1480
690	1118	1808	880	1570
770	1247	2017	890	1660
850	1377	2227	890	1740
920	1490	2410	875	1805
1600	—	—	755	2355
2250	—	—	135	2385

वर्ग III के कर्मचारी को इस राशि के दिए जाने के अलावा उसके मूल वेतन पर 15 प्रतिशत का बोनस भी दिया जाता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि जीवन बीमा निगम के मजदूरी का ढांचा अधिक विषम है क्योंकि समय-समय पर यूनियनों में बेपेंदी के लोटे जैसे प्रबंध वर्ग से रियायतें स्वीकार करवा ली हैं।

इसका परिणाम यह हुआ है कि अब निगम देश भर में स्पष्ट उच्च मजदूरी वाली संस्था दिखती है जबकि देश में काफी मजदूर बेकार हैं और जहां योग्य व्यक्तियों में से अनेक व्यक्ति बराबर बेरोजगार और कम रोजगार के शिकार हैं और इस स्थिति ने उनका नैतिक पतन कर दिया है तब काफी हद तक देश की अर्थव्यवस्था को कमजोर बना दिया है।

भारतीय जीवन बीमा निगम में काफी कर्मचारी हैं और 1960 से 1978 के वर्षों में प्रति कार्यकर्त्ता के वेतन की वृद्धि उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में वृद्धि की अपेक्षा लगभग 80 प्रतिशत अधिक है।

वर्ग III और वर्ग IV के कर्मचारियों के संबंध में विशेषकर यही मामला रहा।

सरकार द्वारा नियुक्त बीमा वित्त समिति ने इन विशिष्ट बातों का उल्लेख करते हुए अपनी बृहदाकार रिपोर्ट में यह बताया है कि कर्मचारियों के वेतन स्तर में वृद्धि मुख्यतया इस बात के लिए उत्तरदायी है कि 1956 में जीवन बीमा के राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप जो कुछ भी किफायतें दी गई थीं, उनका प्रतिसाद वेतन स्तर की वृद्धि द्वारा किया जा चुका है।

प्रशासकीय कर्मचारियों के वेतनों के व्यय में इन सभी वर्षों में वृद्धि की गई है और कुल 'प्रबंध के व्यय' में इनका भाग 1961 में 37.51 प्रतिशत से बढ़कर 1977-78 में 45.21 प्रतिशत हो गया है।

कोयला और इस्पात के उद्योग (1979) के हाल ही के समझौते ने इन दोनों उद्योगों में क्रमशः 512 रुपए और 505 रुपए प्रतिमास की कम से कम मजदूरी स्थिर की गई है। शिपिंग कारपोरेशन ऑफ इंडिया में प्रतिमास न्यूनतम मजदूरी 652 रुपए है और स्टेट ट्रेडिंग कारपोरेशन में 479 रुपए है।

रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के स्टाफ-कार ड्राइवर को अधिकतम 1,079 रुपया प्रतिमास मिलता है; शिपिंग कारपोरेशन ऑफ इंडिया में उसे प्रतिमास 1,388 रुपए मिलते हैं जबकि केंद्रीय सरकार के ड्राइवर को 586 रुपए और भारत हैवी इलैक्ट्रिकल लिमिटेड के ड्राइवर को 653 रुपए प्रतिमास मिलता है। यदि समयोपरि भत्ते को जोड़ दिया जाए तो शिपिंग कारपोरेशन ऑफ इंडिया के स्टाफ-कार ड्राइवर की कुल उपलब्धियां 2,000 रुपए प्रतिमास से अधिक ही हो सकती हैं।

शिपिंग कारपोरेशन ऑफ इंडिया में प्रवेश करते ही एक अधिकारी को 1,700 रुपए प्रतिमास (मूल वेतन और महंगाई भत्ता शामिल करके) मिलता है और रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया में 1,345 रुपए दिए जाते हैं जबकि केंद्रीय सरकार में जूनियर

क्लास I अधिकारी को 998 रुपए दिए जाते हैं ।

बैंकिंग क्षेत्रक, बीमा क्षेत्रक और सार्वजनिक क्षेत्रक के उद्यमों में लगे हुए संघीकृत कर्मचारियों और अधिकारियों को भी महंगाई भत्ता, मकान-किराया भत्ता, नगर प्रतिकर भत्ता और सवारी भत्ते के अलावा सार्वजनिक क्षेत्रक के उद्यमों में अन्य कई प्रकार के भत्ते भी शामिल किए जाते हैं जो वैयक्तिक उद्यमों की 'विशिष्ट' आवश्यकताओं' के साथ जुड़े होते हैं।

कुछ अन्य ऐसे भी हैं जिनको प्रथम नीति के रूप में भारी उद्योग और इसके साथ ही साथ सहवर्ती नियंत्रणों ने जन्म दिया है, यथा—कोटा या परमिट-धारक लाइसेंसधारी, लाभ उठाने वाले, तस्कर, काला धंधा करने वाले, कमीशन एजेंट, ट्रांसपोर्टर और इन सबसे कहीं ऊपर भ्रष्ट राजनीतिज्ञ ।

असीम समृद्धि खुली आंख से साफ नज़र आती है। यह असीम समृद्धि कांग्रेस के समाजवादी रूप ने समाज के उच्च शिखर के लोगों को प्रदान की है। और इस समृद्धि से उनके रहन-सहन के तौर-तरीके तथा वैभव में परिवर्तन आया है। चार या पांच स्टार वाले होटलों की संख्या काफी बढ़ी है और ये होटल अपनी क्षमता के अनुसार पूरे भरे रहते हैं; अधिक आरामदायक यात्रा की सुविधाओं में वृद्धि हुई है; प्रसिद्ध अवकाश/विश्रामगृह में भीड़ बनी रहती है, महंगी सजधज के साथ ठाट-बाट से युक्त आवास-गृहों में वृद्धि हुई है और विवाहों तथा अन्य सामाजिक उत्सवों में संपत्ति का प्रदर्शन होने लगा है । यह भी स्पष्ट है कि विलासितापूर्ण वस्तुओं के उत्पादन और आपूर्ति के आंकड़ों में तेजी से वृद्धि हुई है जिनमें से अधिकांश वस्तुएं जनसाधारण की पहुंच से बिलकुल ही परे हैं ।

वास्तव में 'उच्च शिखर' के लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के विचार से ऐसा किया जाता है, इस प्रकार से हमारे समाज में उच्च शिखर के लोग उच्चतम शीर्ष पर आते हैं जो जनसमाज में 10 प्रतिशत हैं और ये लोग औद्योगिक कार्यकर्ता और सरकारी कर्मचारी होते हैं। ये सबसे अधिक धनी व्यक्ति शहरी जनसंख्या में अधिक मिलते हैं क्योंकि शहरों ने अधिकांशतया रहन-सहन का पश्चिमी तौर-तरीका अपना लिया है और इसी के कारण आधुनिक उद्योग के अधिकांश भाग का अस्तित्व है ।

विकास की प्रथम नीति के रूप में भारी उद्योग के परिणामों में से एक परिणाम ऐसा है जिसने कृषि को पूंजी के अभाव से ग्रस्त कर लिया है। पाठक ने इस पुस्तक के पहले भाग में स्वयं ही देख लिया है कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के समय से एक कृषक और कृषीतर कामगार की आय के बीच की खाई कितनी चौड़ी होती जा रही है। इन दोनों आयों का अनुपात बदल गया है और दोनों में भारी असमानता आ गई है। 1950-51 में इनका अनुपात 1:2 था जो बढ़कर 1976-77 में 1:4 हो गया जबकि सभी उन्नत और सुशासित देशों में यह अनुपात कम होता गया है। यहां हम अपने पाठक को पुनः यह स्मरण दिलाने का जोखिम उठाना चाहेंगे कि दो करोड़ अथवा 200 लाख परिवारों से अधिक परिवारों की कुल परिसंपत्तियां

बिड़ला और टाटा के अलग-अलग हाउस की परिसंपत्तियों से अपेक्षाकृत कम हैं। दो करोड़ से अधिक परिवार हमारे गांवों में आर्थिक सीढ़ी के सबसे निचले भाग में जीवन-निर्वाह करते हैं।

पाठक को यह याद रखना चाहिए कि जो भी आंकड़े ऊपर दिए गए हैं और जिनका उल्लेख इस अध्याय में किया गया है वे पुराने पड़ गए हैं। यदि कुछ भी है तो यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में गत दो वर्षों में आर्थिक असमानताएं और भी बढ़ गई हैं।

यह स्थिति उस भारत की है जो समाजवादी है। अब हम यह देखना चाहेंगे कि 'पूंजीवादी' अमरीका और अन्य कतिपय देशों ने कैसी प्रगति की है। आगामी दो तालिकाओं में जो आंकड़े दिए गए हैं यदि उनकी तुलना की जाए तो यह विदित होगा कि अमरीका में शीर्ष 20 प्रतिशत लोगों की राष्ट्रीय आय 1950 में 45.7 प्रतिशत से घटकर 1959 में 43 प्रतिशत हो गई है और श्रीलंका में 1952-53 में 53.9 प्रतिशत से घटकर 1963 में 42.3 हो गई है जबकि भारत में चार वर्षों की अवधि 1953-57 में 42 प्रतिशत से बढ़कर 1967-68 में 53.3 प्रतिशत हो गई है इसके अलावा यदि सबसे नीचे के 20 प्रतिशत लोगों की राष्ट्रीय आय की तुलना समान अवधि में की जाए तो यह विदित होता है कि अमरीका में केवल 4 प्रतिशत और श्रीलंका में 12 प्रतिशत की कमी हुई है जबकि भारत में यह कमी 40 प्रतिशत तक हो गई है। यह भी उल्लेखनीय है कि जबकि 1959 में अमरीका में राष्ट्रीय आय का केवल 27.8 प्रतिशत भाग 10 प्रतिशत शीर्ष लोगों के हाथ में था तो 1967-68 में भारत के 10 प्रतिशत शीर्ष के लोगों ने 36.5 प्रतिशत हिस्सा बंटाया है।

तालिका 117

आय असमानताओं में वृद्धि

[व्यक्तिगत आय में यूनिटों के क्रमसूचक ग्रुपों के शेयरों की प्रतिशतता (घरेलू अथवा कर विवरणिकाएं) : चुने गए देश)

देश और वर्ष	क्रमसूचक ग्रुपों का शेयर				
	निम्नतम 20%	निम्नतम 60%	उच्चतम 20%	उच्चतम 10%	उच्चतम 5%
1	2	3	4	5	6
अल्पविकसित देश					
भारत, 1853-54 से 1956-57	8.00	36.00	42.00	28.00	20.00
श्रीलंका 1952-53	5.1	27.7	53.9	40.6	31.0
मैक्सिको, 1957	5.4	21.2	61.4	46.4	37.0

(क्रमशः)

1	2	3		4	5
बारबडॉस,1951-52	3.6	27.1	51.6	34.2	22.3
पोर्टो रीको, 1953	5.6	30.3	50.8	32.9	23.4
इटली, 1948	6.1	31.2	48.5	34.1	24.1
विकसित देश					
ब्रिटेन, 1951-52	5.4	33.3	44.5	30.2	20.9
पश्चिमी जर्मनी, 1950	4.0	29.0	48.0	34.0	23.6
नीदरलैंड, 1950	4.2	29.5	49.0	53.0	24.6
डेनमार्क, 1952	3.4	29.5	47.0	30.7	20.1
स्वीडन, 1948	3.2	29.1	46.6	30.3	20.1
अमरीका, 1950[1]	4.8	32.0	45.7	30.3	20.4

स्रोत : 'रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया बुलेटिन', सितंबर, 1963, पृष्ठ 1140, यूनाइटेड नेशन्स, 'नेशनल इनकम एंड इट्स डिस्ट्रीब्यूशन इन अंडरडेवलप्ड कंट्रीज', स्टेटिस्टिकल पेपर, सीरीज ई० नं० 3, न्यूयार्क 1951, पृष्ठ 29.

यूनाइटेड नेशन्स, इकनॉमिक कमीशन फार यूरोप, इकनॉमिक सर्वे आफ यूरोप, 1956, जेनेवा, 1957, अध्याय IX, तालिका 3, पृष्ठ-6.

कुजनैट्स, सीमोन, 'क्वांटीटेटिव आसपैक्ट्स ऑफ द इकनॉमिक ग्रोथ आफ़ नेशन्स, VIII, डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ इनकम बाई साइज, इकनॉमिक डेवलपमैंट एंड कल्चरल चेंज', जनवरी 1963 तालिका 3, पृष्ठ 13-15.

'यूनाइटेड स्टेट्स डिपार्टमैंट ऑफ कॉमर्स, इनकम एंड इट्स डिस्ट्रीब्यूशन इन द यूनाइटेड स्टेट्स', वाशिंगटन, 1953, तालिका 21, पृष्ठ 85.

तालिका 118

दशमक ग्रुपों की आय के भाग की एशिया के चुनिंदा देशों और अमरीका की पारिवारिक आय के वितरण की भारत से तुलना

देश	वर्ष	दशम वर्ग की कुल आय के शेयर की प्रतिशतता									
		D_1	D_2	D_3	D_4	D_5	D_6	D_7	D_8	D_9	D_{10}
अमरीका	1959	1.3	3.3	5.1	6.7	7.9	9.1	11.1	12.4	15.2	27.8
जापान	1963	3.0	4.7	5.7	7.3	7.9	9.0	10.4	12.0	16.0	24.0
ताइवान	1964	3.0	4.8	5.7	6.9	7.6	8.9	9.8	13.2	13.8	26.3
दक्षिणी कोरिया	1966	4.0	5.0	7.0	7.0	9.0	9.0	11.0	12.0	15.0	21.0
फिलीपीन्स	1965	1.1	2.9	3.0	4.7	5.8	6.9	9.0	11.6	15.0	40.0
थाइलैंड	1962	2.8	2.9	3.1	4.1	5.1	6.8	8.2	9.3	14.7	43.0
मलाया	1957-58	2.6	3.9	6.1	5.1	7.2	8.5	10.3	12.4	16.1	27.8
श्रीलंका	1963	1.5	3.0	4.0	5.2	6.3	7.5	9.0	11.2	15.5	36.8
भारत (वर्तमान सर्वेक्षण)	1967-68	1.8	3.3	3.7	4.6	5.8	7.0	9.0	11.8	16.8	36.5

स्रोत : "इनकम इन इक्वैलिटी एंड इकनॉमिक ग्रोथ, द पोस्टवार एक्सपीरयंस ऑफ एशियन कंट्रीज", 'द मलयालम इकनॉमिक रिव्यू', खंड XV, नं० 2, अक्टूबर, 1970, पृष्ठ 7.

* 'बेसिक स्टैटिस्टिक्स रिलेटिंग टु इंडियन इकनॉमी, 1950-51 से 1972-73', तालिका 10, सी० एस० ओ० योजना मंत्रालय, भारत सरकार।

टिप्पणी : D_1 निम्नतम 10 प्रतिशत परिवारों को सूचित करता है और D_{10} उच्चतम 10 प्रतिशत परिवारों को सूचित करता है।

16

बढ़ती हुई बेरोजगारी

अब हम भारी उद्योग के सबसे खराब परिणाम को देखेंगे। यह परिणाम हैं—बढ़ती हुई बेरोजगारी और अल्प-रोजगारी। यह समस्या भारत में संकटसूचक रूप धारण कर चुकी है और सबसे बड़ा सामाजिक और आर्थिक दुर्गुण सिद्ध हो रही है। वस्तुतः इस समस्या ने देश की प्राणाधार शक्ति को खा लिया है और इससे न केवल अमानवीय प्रक्रिया ही विदित होती है बल्कि इससे विस्फोटक और अस्थिरताकारी कारक का भी पता चलता है।

प्रौद्योगिकी और भारी उद्योग जैसे जुड़वां देवताओं के प्रति नेहरू और उनके परामर्शदाताओं का रहस्यवादी विश्वास असंगत सिद्ध हो चुका है। पश्चिमी प्रौद्योगिकी का विकास पश्चिम में श्रमिकों की कमी के कारण हुआ था और आदमियों को मशीन से बदलने की बाद में आवश्यकता हुई। यह पश्चिमी प्रौद्योगिकी ऐसे देशों की संवृद्धि के लिए कोई भी सुगम मार्ग उपलब्ध नहीं कराती जहां अल्प-रोजगार और अल्प पोषण वाले श्रमिकों का आधिक्य है और पूंजी का विकट अभाव है। यही कारण है कि आगे दी गई तालिका में हमारे देश की उच्च महत्वाकांक्षी पंच वर्षीय योजनाओं ने प्रति पांच वर्ष की अवधि के अन्त में अपेक्षाकृत अधिक बेरोजगारी नियमित रूप से दिखाई है जबकि योजना के प्रारंभ में ऐसा नहीं था, यहां तक कि यह भी मान लिया जाए कि योजना को पूर्णरूपेण कार्यान्वित किया गया था।

इस प्रकार पिछली बेरोजगारी बराबर बढ़ती जा रही है जबकि विभिन्न योजनाओं में लाखों अतिरिक्त रोजगार के अवसर पैदा हो गए हैं।

रोजगार-कार्यालयों के वर्तमान रजिस्टरों में आवेदकों की संख्या के विवरण भी निराशाजनक कहानी सुनाते हैं। मार्च, 1971 के अंत में रोजगार-कार्यालयों के वर्तमान रजिस्टर में लोगों की संख्या 42.2 लाख थी जबकि यह संख्या बढ़कर मार्च, 1977 के अंत में 102.4 लाख हो गई—इस प्रकार 143 प्रतिशत की वृद्धि हुई है

(तालिका 120)। इसके विपरीत, स्थापनों की संख्या 1971 में 5.06 लाख से घटकर 1977 में 4.62 लाख हो गई है। फिर भी इस स्थिति के ये सही आंकड़े नहीं हैं क्योंकि

तालिका 119

प्रत्येक पंचवर्षीय योजना की अवधि की समाप्ति पर
बेरोजगारी का घनत्व

(आंकड़े दस लाख में)

योजना		पिछला	नए आगन्तुक	उपलब्ध किया गया अतिरिक्त रोजगार	अन्तर
पहली योजना	(1951-56)	3.3	9.0	7.0	5.3
दूसरी योजना	(1956-61)	5.3	11.8	10.0	7.1
तीसरी योजना	(1961-66)	7.1	17.0	14.5	9.6
चौथी योजना*	(1969-74)	13.6	27.3	18.0	22.9
पांचवीं योजना	(1974-79)	लागू नहीं	लागू नहीं	लागू नहीं	लागू नहीं
छठी योजना	(1978-83)	20.6	29.5	49.2	0.9

स्रोत : 'योजना, खण्ड XXIII, 6 जनवरी, 1976, पृष्ठ 78, 1968-69 के अंत तक इसमें 40 लाख पिछले आंकड़ों को भी शामिल किया गया है।

टिप्पणी : छठी योजना के आंकड़े 'अनुमान' हैं।

कई नौकरियां रोजगार-कार्यालयों की सीमा से बाहर कर ली गई हैं और उन्हें राज्य तथा केन्द्र सरकारों द्वारा स्थापित सेवा आयोगों और बोर्डों तथा स्थापनाओं, यथा—डाक व तार, नियंत्रक और महालेखा परीक्षक का कार्यालय, जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम और राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा भर ली गई हैं।

तालिका 120

वित्तीय वर्ष के अंत में रोजगार कार्यालय के अद्यतन रजिस्टर
और नौकरी चाहने वाले आवेदकों की संख्या और नौकरियां

(हजारों में)

वर्ष	31 मार्च को आवेदकों की संख्या	नौकरियां
1	2	3
1971	4221.0	506
1972	5247.9	508
1973	7208.8	518

(क्रमश)

1	2	3
1974	8151.7	399
1975	8539.1	404
1976	9353.0	497
1977	10238.7	462
1978	11346.3	450
1979 (मार्च के अंत में)	13405.8	469
(दिसम्बर के अंत में)	14333.9	350

टिप्पणी : जून, 1980 के अंत तक आवेदकों की संख्या बढ़कर 1,49,48,000 से अधिक हो गई।

जून, 1979 के आंकड़ों के विश्लेषण से यह विदित होता है कि शिक्षित बेरोजगारों (मैट्रिकुलेट और इससे ऊपर) की सबसे बड़ी संख्या पश्चिमी बंगाल के रोजगार-कार्यालयों में रजिस्टर की गई जो 9,42,600 थी। इसके बाद बिहार में 8,59,400; उत्तर प्रदेश में 7,91,200; केरल में 6,28,200; महाराष्ट्र में 5,60,300; आंध्र प्रदेश में 4,89,900; तमिलनाडू में 4,86,900; कर्नाटक में 3,42,100 और मध्य प्रदेश में 3,37,800 रही।

यह भी उल्लेखनीय है कि रोजगार-कार्यालय के विवरण निम्न सीमाओं के अधीन हैं :

(क) रोजगार-कार्यालयों में रजिस्टर किए गए सभी नौकरी तलाश करने वाले लोग आवश्यक रूप से बेरोजगार नहीं होते क्योंकि कुछ काम में लगे हुए व्यक्ति भी अपने को अच्छे रोजगार में लगाने के लिए इन रोजगार-कार्यालयों में रजिस्टर कराते हैं;

(ख) रजिस्टर कराना स्वैच्छिक है, सभी बेरोजगार लोग रोजगार-कार्यालयों में अपना नाम रजिस्टर भी नहीं कराते; और

(ग) रोजगार-कार्यालय जिला मुख्यालयों में स्थित होते हैं अतः ऐसे करोड़ों व्यक्तियों को नहीं गिना जा सकता जो गांव में बेरोजगार पड़े हुए हैं।

इसलिए रोजगार-कार्यालय के विवरण भले ही संकेतक हों फिर भी उनसे देश की बेरोजगारी की स्थिति की पूरी तस्वीर नहीं मिल सकती।

बेरोजगारी के लिए कमेटी (भगवती कमेटी) 1973 ने राष्ट्रीय प्रतिदर्श

सर्वेक्षण के 19वें सर्वेक्षण के आधार पर 1971 में बेरोजगार लोगों की संख्या का अनुमान 1.87 करोड़ बताया है। इनमें से 1.61 करोड़ देहाती क्षेत्रों में (76 लाख पुरुष और 85 लाख महिलाएं) हैं और शहरी क्षेत्रों में 26 लाख (16 लाख पुरुष और 10 लाख महिलाएं) हैं।

हमारे देश में बेरोजगारी का अनुमान असंतोषजनक हैं क्योंकि एक ओर ये लगातार बेरोजगारी और अल्परोजगारी के बीच में भेद नहीं कर पाते और दूसरी ओर अनियमित बेरोजगारी के आंकड़े नहीं दे पाते। पहला प्रकार बेरोजगारी समस्या का एक छोटा भाग है। सबसे महत्वपूर्ण भाग अनियमित बेरोजगारी का है अर्थात् कुछ लोग बेरोजगार होते हैं लेकिन उन्हें कुछ दिनों या सप्ताहों के लिए थोड़ा बहुत काम मिल जाता है परन्तु वर्ष की शेष अवधि में वे बेकार रहने के लिए बाध्य हो जाते हैं। छठी पंचवर्षीय योजना में दिखती हुई निरन्तर बेरोजगारी के बहुत ही कम आंकड़े दिखाने पर चेतावनी दी गई है। इस योजना के प्रारूप में यह कहा गया है कि "निरंतर बेरोजगारी भारतीय बेरोजगारी समस्या का एक बहुत छोटा भाग है क्योंकि वर्ष पर्यन्त बहुत ही कम लोग बेरोजगार रह पाते हैं उनमें से लाखों लोग कुछ सप्ताहों या महीनों के लिए थोड़ा-बहुत काम प्राप्त कर लेते हैं और वर्ष के शेष भाग में बेरोजगारी के लिए बाध्य हो जाते हैं।" निरंतर अल्प रोजगार शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में पाया जाता है लेकिन देहाती क्षेत्र में इसकी अधिकता है।

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन ने इस स्थिति का आकलन किया है। संगठन ने इस बात का प्रयास किया है कि संदर्भगत सप्ताह के दौरान क्या कोई व्यक्ति एक घंटे के लिए भी रोजगार पा सका है और संदर्भगत सप्ताह में प्रतिदिन वह व्यक्ति क्या काम करता रहा है। दूसरी स्थिति के औसत को देखते हुए यह पता लगता है कि वर्ष के विशेष दिन में रोजगार/बेरोजगार कितना रहा है।

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 32वें सर्वेक्षण के अनुसार 1977-78 के वर्षों में 168.9 लाख व्यक्ति बेरोजगार रहे। इसका अर्थ यह है कि 168.9 लाख व्यक्ति अर्थात् श्रमिक दल का 8.61 प्रतिशत भाग वर्ष के किसी विशेष दिन काम के लिए उपलब्ध था लेकिन उन्हें उस दिन कोई काम न मिला (देखिए, तालिका 121)।

यदि प्रत्येक राज्य में रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या की तुलना श्रमिक दल से की जाए तो सबसे अधिक बेरोजगारी की दर केरल में मिलती है। यह दर 26.02 प्रतिशत तक ऊंची है। इससे यह प्रकट होता है कि प्रति चार व्यक्तियों में से एक व्यक्ति बेरोजगार रहता है। यह प्रतिशतता समान रूप से शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में एक जैसी है। इसके बाद सबसे ऊंची बेरोजगारी की दर तमिलनाडू की है अर्थात् वहां 16.06 प्रतिशत की बेरोजगारी है। इसके बाद आंध्र प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, कर्नाटक, महाराष्ट्र और बिहार की स्थिति है। पांडिचेरी और गोवा जैसे क्षेत्रों में भी बेरोजगारी की ऊंची दरें केवल मध्य प्रदेश, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश जैसे राज्यों में बेरोजगारी की दरें कम हैं।

तालिका 121

बेरोजगारी की दैनिक स्थिति की राज्यवार दरें

1977-78

क्रम संख्या	राज्य/संघीय प्रदेश	बेरोजगारी	अखिल भारतीय कुल बेरोजगारी में राज्य का भाग	बेरोजगारी की दरें	अखिल भारतीय कुल मजदूरी शक्ति में राज्य का भाग
		(दस लाख)	(प्रतिशत)	(प्रतिशत)	(प्रतिशत)
1.	तमिलनाडू	2.80	16.63	16.06	8.80
2.	आंध्र प्रदेश	2.00	11.87	10.78	9.36
3.	केरल	1.96	11.62	26.02	3.79
4.	महाराष्ट्र	1.72	10.18	8.15	10.62
5.	पश्चिमी बंगाल	1.58	9 37	10.44	7.63
6.	बिहार	1.48	8.81	8.13	9.21
7.	उत्तर प्रदेश	1.18	6.99	4.29	13.84
8.	कर्नाटक	1.09	6.45	9.58	5.72
9.	गुजरात	0.66	3.90	6.38	5.20
10.	उड़ीसा	0.62	3.67	8.16	3.82
11.	मध्य प्रदेश	0.53	3.13	3.13	8.51
12.	राजस्थान	0.32	1.91	3.35	4.85
13.	पंजाब	0.22	1.31	5.03	2.22
14.	हरियाणा	0.21	1.24	6.87	1.54
15.	दिल्ली	0.20	1.20	11.32	0.90
16.	जम्मू और कश्मीर	0.09	0.53	5.93	0.76
17.	आसाम	0.08	0.48	10.82	2.26
18.	गोवा	0.05	0.29	14.53	0.16
19.	पांडिचेरी	0.04	0.21	22.48	0.08
20.	हिमाचल प्रदेश	0.03	0.17	2.19	0.65
21.	चंडीगढ़	*	0.03	5.55	0.04
22.	मेघालय	*	0.01	2.50	0.03
23.	नागालैंड	*	†	0.52	0.01
	अखिल भारत	16.85	100.00	8.50	100.00

*5000 से कम।

मणिपुर और त्रिपुरा राज्य को शामिल नहीं किया गया है।

† नगण्य

तालिका 122

'दैनिक कार्यकलाप' और 'साप्ताहिक कार्यकलाप' की स्थिति के आधार पर 15 से 59 वर्ष की आयु वाली श्रमशक्ति की बेरोजगार जनसंख्या की प्रतिशतता

राज्य/संघीय प्रदेश	15 से 59 वर्ष की आयु वाली श्रमशक्ति की बेरोजगार जनसंख्या की प्रतिशतता							
	साप्ताहिक कार्यकलापों के आधार पर				दैनिक कार्यकलापों के आधार पर			
	ग्रामीण		शहरी		ग्रामीण		शहरी	
	पुरुष	महिलाएं	पुरुष	महिलाए	पुरुष	महिलाएं	पुरुष	महिलाएं
1	2	3	4	5	6	7	8	9
अखिल भारत	3.89	4.39	7.35	11.94	7.56	9.51	9.54	15.60
आंध्र प्रदेश	4.26	8.50	8.20	11.90	8.66	14.32	10.73	16.18
आसाम	1.61	0.92	4.15	10.96	1.59	1.20	3.92	11.70
बिहार	4.56	4.73	6.82	9.01	7.77	9.70	8.14	11.21
गुजरात	2.96	2.34	5.09	5.86	6.35	5.69	6.98	8.57
हरियाणा	5.07	1.37	5.66	7.91	7.61	3.02	7.06	8.95
हिमाचल प्रदेश	1.99	—	5.71	12.03	2.91	0.15	6.25	13.38
जम्मू और कश्मीर	4.23	1.73	4.65	17.49	6.42	2.40	5.24	18.65
कर्नाटक	3.12	4.63	6.97	9.15	8.35	11.42	10.59	14.23
केरल	12.96	13.63	15.33	16.06	25.99	28.94	25.16	26 92
मध्य प्रदेश	1.41	1.86	4.87	4.31	2.44	3.32	5.85	5.88
महाराष्ट्र	3.03	4.14	7.76	15.83	6.16	9.21	9.07	16.40

(क्रमश:)

1	2	3	4	5	6	7	8	9
मेघालय	—	—	1.28	7.25	—	—	1.04	6.67
नागालैंड	—	—	0.60	—	—	—	0.60	—
उड़ीसा	4.08	5.62	6.99	8.23	7.82	9.38	8.67	13.07
पंजाब	2.82	1.05	3.93	8.13	5.46	2.18	4.88	11.09
राजस्थान	2.45	1.59	4.60	1.60	3.49	2.24	5.69	2.60
तमिलनाडू	6.19	5.50	9.47	13.92	15.80	17.77	14.12	20.47
उत्तर प्रदेश	2.73	1.25	5.23	4.15	4.28	2.75	6.71	5.06
पश्चिमी बंगाल	4.75	3.88	9.93	14.13	9.66	10.28	11.85	17.29
चंडीगढ़	—	—	2.29	16.28	—	—	2.86	20.16
दिल्ली	8.70	20.92	6.87	31.48	9.38	28.87	7.35	33.44
गोवा, दमन और दीव	11.20	12.12	10.63	12.97	15.51	14.03	12.07	16.96
पांडिचेरी	10.47	7.53	14.18	13.45	27.08	25.11	17.90	17.12

स्रोत : भारत सरकार, राष्ट्रीय प्रतिशत सर्वेक्षण संगठन, 32वां सर्वेक्षण (जुलाई, 1977 से जून, 1978), नम्बर 282/2 'सम की रिजल्ट्स फॉम द सर्वे ऑन एम्प्लोयमैंट एण्ड अनएम्प्लोयमैंट' (सब-राउंड्स 2, 3, 4, और सभी सम्मिलित करके) अप्रैल, 1979.

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण रिपोर्ट संख्या 215 के अनुसार वर्ष 1970-71 में देश में अनुमानित 10.06 करोड़ ग्रामीण परिवारों में से 8.1 करोड़ परिवार (80.5 प्रतिशत) के पास भूमि थी। ग्रामीण क्षेत्रक में 7.8 करोड़ परिवारों में से भूमिहीन परिवार लगभग दसवां भाग (9.6 प्रतिशत) थे। भूमि स्वामित्व वाले परिवारों में से लगभग तीन-चौथाई भाग के परिवार (76 प्रतिशत) छोटी-छोटी जोतों के मालिक थे। इनके पास अधिकार में रखी गई कुल भूमि क्षेत्र का लगभग एक-चौथाई भाग (24 प्रतिशत) था; बड़ी-बड़ी जोतों के मालिक बहुत कम (2.3 प्रतिशत) थे लेकिन कुल स्वामित्व भूमि का एक-चौथाई भाग (23 प्रतिशत) इनके अधिकार में था। एक एकड़ से लेकर 2.5 एकड़ की सीमांत जोतों अथवा अलाभकारी जोतों के मालिक ग्रामीण परिवारों के 52.98 प्रतिशत हैं और इन परिवारों के लोग संभाव्य रूप से नौकरी खोजने वाले लोग हैं।

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान ने एक अध्ययन किया है जिससे यह पता चलता है कि कृषीतर क्षेत्रक अपने ही में उत्पन्न नौकरी खोजने वाले अतिरिक्त लोगों को खपाने में असमर्थ रहा है। 1962-76 वर्षों की भविष्य से लगभग 80 लाख कार्यकर्त्ता फार्म क्षेत्रक को पुन: वापिस कर दिए गए हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में 'कार्य के लिए भोजन' की व्यवस्था से काम दिलाने की स्थिति में सुधार हुआ है। इस हेतु 10 मीट्रिक टन खाद्यान्न अलग से रख देने से दस लाख व्यक्तियों को वर्षों तक काम दिया जा सका है।

'द स्टेट्समैन' में 25 सितम्बर, 1979 को इस बात का उल्लेख किया गया है:

> "राष्ट्र के दैनिक जीवन में यह सुधार विशेष उल्लेखनीय नहीं है: समुद्र में केवल एक बूंद डालने से उत्तेजित समुद्र के स्तर में विशेष अन्तर नहीं आता....'काम के लिए भोजन' की स्थायी प्रकार की योजना का कुल मिलाकर बेरोजगारी के आंकड़ों के प्रभाव की दृष्टि से विचार करना चाहिए।"

देश के अधिकांश भागों में गरीब लोगों के लिए कार्य के अवसर इतने सीमित होते जा रहे हैं कि वे अपने दुःख में कोई भी मार्ग नहीं निकाल पाते। जब कभी उन्हें समय-समय पर आकस्मिक काम मिल पाता है तो उनकी उत्पादकता बहुत ही कम हो जाती है। इनमें से कतिपय लोगों के पास भूमि होती है लेकिन यह भूमि बहुत कम होती है। अधिकांश लोगों के पास कोई भूमि नहीं होती और उन्हें भविष्य में भी भूमि पाने की कोई संभावना नहीं है। उन्हें ग्रामीण क्षेत्रों में अपने जीवन-यापन के साधन की कोई आशा नहीं रहती, अत: वे बड़े शहरों में चले जाते हैं। उनके लिए बड़े शहरों में भी कोई काम नहीं हो पाता और शहरों में उनके लिए आवास की सुविधा भी नहीं होती। वे शहरों में इसलिए एकत्र हो जाते हैं कि गांवों की अपेक्षा शहरों में कुछ न कुछ काम खोजने के अवसर होते हैं जबकि शहरों में ऐसे अवसर नहीं हैं। इसलिए शहरी गरीबी, कम-से-कम बड़े शहरों में, और अधिक हो

गई है, सड़कों पर लोग रहने लगे हैं और गन्दी बस्तियां बढ़ गई हैं जिसके कारण बीमारी बढ़ गई है तथा स्वास्थ्य बिगड़ने लगे हैं।

लेखक मजदूर की दुर्दशा का चित्रण किये जाने का लोभ संवरण नहीं कर सकता, जैसाकि सुशील जे० सिलवानो ने किया है और जो 10 फरवरी, 1972 के 'पाइनियर', लखनऊ में प्रकाशित किया गया :

वे केवल आज के लिए जीवित हैं

उस मजदूर की आशा भरी आंखों में देखना ही पर्याप्त है, जो दिन के समाप्त होने पर नियोक्ता से पूछता है, "सरकार कल फिर आएं ?" उसका यह कथन दर्दनाक अनिश्चतता से किसी को भी अभिभूत कर सकता है क्योंकि समाज के इस वर्ग को इस अनिश्चितता का सदैव सामना करना पड़ता है।

लखनऊ में मजदूर के लिए कल कभी नहीं आता। वह सिर्फ आज के लिए ही जीवित है और इस तथ्य को जानता है कि भविष्य निराशापूर्ण है।

मजदूर को कम पारिश्रमिक मिलता है। वह बहुत ज्यादा काम करता है। उसका पोषण भली भांति नहीं हो पाता और वह संगठित भी नहीं है। वह आसानी से शोषकों का शिकार बन जाता है और उसके जीवन में किसी प्रकार की कोई सुरक्षा नहीं है। मजदूर बोझा ढोने वाले पशु के समान है जिसके लिए कोई प्रार्थना नहीं करता। उसके लिए प्रत्येक सूर्यास्त उसके जीवन का सूर्यास्त है।

यदि कोई व्यक्ति प्रात:काल अमीनाबाद के फतेहगंज और हजरतगंज के शाहनजफ़ सड़क पर टहलने जाये तो उसे मजदूर की दयनीय स्थिति का अपने आप ही अनुभव हो जायेगा। वे शोषण की बलिवेदी पर बलिदान होने वाली भेड़ों की तरह जीवित रहते हैं। उनकी मजदूरी की दरें नियोक्ता के अनुसार बदलती रहती हैं।

मजदूर अपने दिन भर के संघर्ष से अधिक थक जाता है। वह दिन निकलते ही निराशा से अपना काम शुरू करता है और सोते समय भी उसे निराशा ही रहती है।

"साहब, एक मुट्ठी चना, थोड़ी-सी प्याज और नमक से हम अपना गुजारा कर सकते हैं।" यही वह सब कुछ है जिसकी आवश्यकता उसे स्वस्थ रहने के लिए होती है लेकिन क्या इन लोगों को अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए यह थोड़ा आहार भी मिल पाता है और क्या वे अपनी पत्नी और बच्चों के लिए भी कुछ बचा लेते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूप से 'नहीं' है।

गांव में रोजगार का अभाव होने के कारण ग्रामीण शहर को चल देते हैं। वे शहर में इकट्ठा होते हैं क्योंकि शहर में कुछ चमक-दमक है और यही चमक-दमक उन्हें शहर की ओर खींच लाती है। वे शहर में काम की तलाश करते हैं लेकिन उनकी आशाएं चकनाचूर हो जाती हैं। मजदूरों के बाजार में भीड़ लगी है, मजदूरों में आपस में अधिक प्रतियोगिता है इसलिए नये आने वाले लोग अपने उन भाइयों से बहुत पीछे रह जाते हैं जो अधिक भाग्यशाली हैं। यह योग्यतम की उत्तरजीविता नहीं बल्कि सबसे भाग्यवान की उत्तरजीविता है जो किसी मजदूर को 'मजूरी' दिलाने

के अवसर का निर्धारण करती है और वह भी केवल एक दिन के लिए।

"साहब, कहने से क्या फायदा। मेरे बीवी-बच्चे अक्सर भूखे पेट सो जाते हैं।" इस तरह एक मजदूर अपनी दुर्दशा का बयान करता है।

उसका झुर्रीदार चेहरा और आंसू भरी आंखें उसकी पत्नी के लिए भोजन और उसके बच्चों के लिए संतोष है। "क्या हम इन्सान नहीं हैं?"—एक वृद्ध मजदूर ने रोते हुए कहा। उस मजदूर ने स्वयं कई शानदार इमारतें बनाई हैं लेकिन अपने लिए तथा अपनी पत्नी और बच्चों के लिए झोंपड़ी भी नहीं बना सका है। इन अभागे लोगों को हमारी कल्याणकारी सरकार क्या देती है?

"हमारा क्या कसूर है, यही कि हम गरीब पैदा हुए हैं।" वास्तव में इसमें किसी का कोई दोष नहीं है।

यह कहना व्यर्थ ही है कि 1972 से हमारे देश में बेरोजगारी की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है : वास्तव में यह स्थिति अधिक बिगड़ती गई है।

31 दिसम्बर, 1981 को रोजगार-कार्यालय के अद्यतन रजिस्टर में जो काम खोजने वालों की संख्या शैक्षिक स्तरों के अनुसार वर्गीकृत की गई है, वह इस प्रकार है:

तालिका 123

31 दिसम्बर, 1979 को रोजगार-कार्यालय के अद्यतन रजिस्टर में दर्ज काम खोजने वालों की संख्या

(हजारों में)

क्रम संख्या	शिक्षा का स्तर	31-12-1979 को अद्यतन रजिस्टर में दर्ज संख्या	
1	2	3	4
1.	मैट्रिक से कम (अशिक्षितों को सम्मिलित करके)		7036.8
2.	मैट्रिक		3996.3
3.	वे लोग जिन्होंने उच्चतर माध्यमिक परीक्षा पास की है (इंटरमीडिएट-अण्डर ग्रेजुएट को शामिल करते हुए)		1882.3
4.	बी० ए० (स्नातकोत्तरों को शामिल करते हुए)		1418.5
	i. कला	696.1	
	ii. विज्ञान	312.4	
	iii. वाणिज्य	221.2	
	iv. इंजीनियरिंग	21.8	
	v. चिकित्सा-शास्त्र	13.8	
	iv. पशु-चिकित्सा	0.5	
	vii. कृषि	11.7	

(क्रमशः)

1	2	3	4
viii.	कानून	4.4	
ix.	शिक्षा	124.0	
x.	अन्य	12.6	
	योग		14333.9

टिप्पणियां : 1. यह सूचना प्रतिवर्ष जून और दिसम्बर के अन्त में अर्धवार्षिक अन्तराल पर एकत्रित की जाती है।

2. दिल्ली और महाराष्ट्र के सिवाय विश्वविद्यालय रोजगार सूचना और मार्गदर्शी ब्यूरो के आंकड़ों को छोड़ दिया गया है।

हजारों इंजीनियर सड़कों पर घूमते फिरते हैं जबकि हमारे देश में करोड़ों आवास-गृहों, लाखों मील सड़कों, हजारों पुलों, स्कूलों और अस्पतालों के निर्माण की आवश्यकता है, हजारों बेरोजगार डॉक्टर हैं जबकि करोड़ों लोग बिना चिकित्सा-सहायता के रह जाते हैं। अनेक अध्यापक काम तलाश करते-करते भुखमरी से अधमरे हो जाते हैं जबकि हमारे देश की जनसंख्या के दो-तिहाई लोग अशिक्षित हैं। हमारे सामने एक ऐसी तस्वीर है जिसे केवल अस्तव्यस्त योजना अथवा योजनाबद्ध अस्तव्यस्तता कहा जा सकता है।

इसलिए हमारे नौजवान वैज्ञानिक देश से बाहर रोजगार तलाश करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। संसद के समक्ष (अप्रैल 1976 में) आकलन समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई जिसमें विदेश में काम पर लगाए गये भारतीय अधिकारियों और विशेषज्ञों के बारे में कुछ ऐसे विशेष तथ्य बताये गये हैं, जिनसे प्रतिभा-पलायन के अब तक अज्ञात पक्षों के विषय में बहुत कुछ पता लगा है। इससे अंकटाड अध्ययन के परिणामों का पता लगता है जिसके अनुसार जब कभी कोई 'मैडीकल डॉक्टर' अमरीका में बसने के लिए भारत छोड़ता है तो इससे भारत को 3,30,000 रुपये की हानि होती है और अमरीका को 51,75,000 रुपए का लाभ होता है। इसी प्रकार प्रत्येक वैज्ञानिक के प्रवास से इस देश को 1,72,000 रुपये की हानि और अमरीका को 18,75,000 रुपये का लाभ हो जाता है। वर्ष 1970 में ही 3,141 भारतीय डॉक्टर और वैज्ञानिक अमरीका में जाकर बस गये और इस धरती पर जो सबसे अधिक वैभव-सम्पन्न राष्ट्र हैं उनमें से एक राष्ट्र की सम्पत्ति में 656 करोड़ रुपए की राशि जुड़ गई। कुल मिलाकर सरकार ने 1971 तक लगभग 30,000 प्रखर वैज्ञानिकों और तकनीशियनों के प्रशिक्षित किया जिनमें 5,000 पी-एच० डी० उपाधि प्राप्त विद्वान सम्मिलित हैं, जिसके फलस्वरूप अन्य उन देशों के और अधिक विकास में वृद्धि हुई है जो कि पहले से ही भारत से कहीं अधिक वैभवशाली हैं।

'स्टेट्समैन', नई दिल्ली ने 4 अप्रैल, 1979 को अपने संपादकीय में इस विषय की समीक्षा करते हुए कहा है :

संसाधनों की बर्बादी

जहां तक भारत के क्षेत्रफल का संबंध है उसे देखते हुए भारत को वैज्ञानिक और तकनीकी मानव-शक्ति की दृष्टि से विश्व में तीसरा स्थान दिया जा सकता है; औद्योगिक रूप से यह देश अन्तर्राष्ट्रीय लीग में 10 वें स्थान पर है लेकिन रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय के आंकड़ों से यह विदित होगा कि 2,50,000 से अधिक वैज्ञानिक और तकनीकी कर्मचारी बेरोजगार हैं। इन आंकड़ों में इंजीनियरी और प्रौद्योगिकी के 1,90,000 ग्रेजुएट, 36,000 इंजीनियरिंग डिप्लोमाधारी, 3,300 चिकित्सा-ग्रेजुएट और 5,600 कृषि-ग्रेजुएट और पोस्ट-ग्रेजुएट शामिल हैं। 1952 और 1975 के बीच में फार्म ग्रेजुएटों की संख्या 870 से बढ़कर 3,966 हो गई जो चौगुने से भी अधिक है। विडंबना यह है कि कृषि क्षेत्रक में अभी तक इन बढ़े हुए फार्म-ग्रेजुएटों को खपाया नहीं जा सका है। इस क्षेत्रक में प्रसार पद्धति के तीव्रीकरण का सुझाव दिया गया है। पार्किन्सन के नियम के चालू होने का भय है। सीमांत उत्पादकता में वृद्धि की प्रतिफल दर शून्य हो सकती है। यदि फार्म ग्रेजुएट के शिक्षित करने का हिसाब लगाया जाए तो देश को कितनी अधिक हानि उठानी पड़ती है, यह बात स्पष्ट है। वस्तुतः यह अनुमान लगाया गया है कि प्रौद्योगिकी संस्थान में एक इंजीनियरी ग्रेजुएट के लिए लगभग 70,000 रुपये व्यय किए जाते हैं।

शिक्षा मंत्री श्री बी० शंकरानन्द ने 30 जुलाई, 1980 को संसद् में यह कहा कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अभी हाल ही में जो अध्ययन किया है उसके अनुसार, "भारत विश्व में चिकित्सा क्षेत्र में सबसे अधिक मानव-शक्ति प्रदान करता है।" उच्च योग्यता-प्राप्त 15,000 चिकित्सा क्षेत्र के डॉक्टर और अनेक अज्ञात, लेकिन काफी बड़ी संख्या में, मैडीकल ग्रेजुएट और प्रशिक्षित नर्सें अन्य देशों में कार्य कर रहे हैं। "शायद ही कोई ऐसा देश हो जहां भारतीय डॉक्टर न हों।" इस अध्ययन से यह पता लगता है और यह संकेत मिलता है कि विदेशों में काम करने वाले 15,000 भारतीय मैडिकल डॉक्टरों के कारण "भारत सरकार को 14 करोड़ 40 लाख डालर के निवेश की हानि उठानी पड़ी है।"

विदेशों को जाने वाले भारतीय वैज्ञानिक और तकनीकी कर्मचारी हाल ही में डॉक्टरों से कहीं अधिक बढ़ गए हैं। कुछ वर्ष पूर्व 50,000 डॉक्टर विदेशों में सेवा कर रहे थे। अब भी इतनी ही संख्या में भारतीय डॉक्टर विदेशों में काम करते हैं लेकिन यदि भरती के सरकारी आंकड़ों को मार्गदर्शक मान लिया जाए तो इन डॉक्टरों की तुलना में वैज्ञानिक और तकनीकी कर्मचारियों की संख्या अधिक है।

1 जनवरी, 1980 को राष्ट्रीय रजिस्टर के 'भारतीयों के विदेशी सेक्शन के अन्तर्गत 22,320 लोग भरती किए गए थे। इनमें से 5,203 इंजीनियर और तकनीशियन, 3,744 वैज्ञानिक, 2,209 डॉक्टर और 11,164 सामाजिक वैज्ञानिक तथा अन्य विशेषज्ञ थे।

अमरीका में उन 37 प्रतिशत का हिसाब है जिनका वैज्ञानिक और तकनीकी

क्षेत्रों में रजिस्ट्रेशन किया गया है । ब्रिटेन में 35 प्रतिशत, पश्चिमी जर्मनी में 8.7 प्रतिशत, कनाडा में 6.1 प्रतिशत, और अन्य यूरोपीय देशों में 7.6 प्रतिशत लोग इन क्षेत्रों में लगे हैं ।

अमरीका में इन लोगों में से लगभग 53.8 प्रतिशत विशेषज्ञों ने वापस न लौटने का निर्णय कर लिया है । इस प्रकार के लोगों की संख्या ब्रिटेन में 49.1 प्रतिशत, पश्चिमी जर्मनी में 51.4 प्रतिशत, कनाडा में 61.4 प्रतिशत और यूरोपीय देशों में 41.4 प्रतिशत रही ।

भारत सरकार ने भारतीय वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को भारत में फिर से बुलाने के लिए जो कदम उठाए हैं, उनमें से एक का लक्ष्य केवल वैज्ञानिकों का पूल बनाना है । अभी तक इस पूल के लिए 9,889 लोगों को चुना गया है और इनमें से 5,570 लोग ही भारत लौटे हैं ।

भारत का वि-उद्योगीकरण

भारत में इससे पूर्व परिस्थितियां इतनी खराब नहीं थीं । पूर्णतया कृषि पर ही निर्भर रहने वाला भारत सदैव न तो गरीब था और न ही अविकसित देश था । 1916-18 में भारतीय औद्योगिक आयोग की एक बैठक हुई । जिसमें थामस हालैंड ने अध्यक्षता की । उन्होंने अपनी रिपोर्ट को इस वक्तव्य के साथ प्रारम्भ किया है :

> "एक समय था जब आधुनिक औद्योगिक पद्धति के जन्मस्थल पश्चिमी यूरोप में भी असभ्य जनजातियां रहती थीं । उस समय भारत अपने शासकों की सम्पत्ति और अपने दस्तकारों के उच्च कलात्मक कौशलों के लिए प्रसिद्ध था । यहां तक कि बाद के समय में जब पश्चिम से सौदागर पहली बार भारत आए तो इस देश का औद्योगिक विकास किसी भी दशा में अपेक्षाकृत अधिक उन्नत यूरोपीय राष्ट्रों की तुलना में कम नहीं था ।"[1]

पाठक को बाद में यह देखने को मिलेगा, जब अंग्रेज भारत में आए थे उस समय "यह देश विशुद्ध रूप से कृषि देश नहीं था; यह देश एक महत्त्वपूर्ण निर्माता केन्द्र था और इस देश से यूरोप, अरब, मिस्र और चीन को कलापूर्ण ढंग से बनाई गई वस्तुएं निर्यात की जाती थीं । मुलायम सिल्क, मलमल, फीते, कसीदाकारी, जवाहरात और कम्बल विदेश भेजे जाते थे । अंग्रेजों ने ही इस कार्य-विधि में दखल दिया और उन्होंने अपने अस्थिर-लोभी व्यापारियों की मदद से बड़ी सख्ती से भारतीय आर्थिक क्रांति को मिटा दिया और इस देश को अपनी मध्यावधि अर्थव्यवस्था तथा स्थायी भुखमरी की ओर अग्रसर होने के लिए बाध्य कर दिया । ब्रिटिश निर्माताओं ने तरीके से भारतीय हस्तकलाओं को जड़ से उखाड़ फेंका, जैसे ही उन्हें 1764 में बंगाल और बिहार पर अपना राजनीतिक नियंत्रण मिला । उदाहरण के लिए 1769 के

1. 'इंडियन इंडस्ट्रियल कमीशन रिपोर्ट', पृष्ठ 6.

प्रारंभ में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने निदेशकों और अन्य कर्मचारियों से यह कहा कि वे यह सुनिश्चित करें कि सिल्क का धागा बनाने वाले कम्पनी के कारखानों में काम करते हैं और उन्हें "सरकार के प्राधिकारण द्वारा प्रदत्त कठोर सजाओं के जरिए" कम्पनी के बाहर काम करने से रोक दिया जाए। बंगाल के कलाकार और वस्तुओं के निर्माताओं से ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा प्राय: यह अपेक्षा की जाती थी कि वे नियत समय पर और उस नियत कीमत पर नियत मात्रा में वस्तुओं की आपूर्ति करें जो बाजार की दरों की अपेक्षा 15 से 40 प्रतिशत कम होती थीं।

1772 में अंग्रेज सौदागर विलियम बोल्ट्स का लिखा हुआ पत्र प्रकाशित हुआ है, जिसके अनुसार "कम्पनी के एजेंटों ने कारीगरों को इस बात पर बाध्य कर दिया है कि वे उनकी इच्छा के अनुसार समझौता करें, लेकिन वे ऐसे समझौतों के अनुसार कार्य करने में असमर्थ रहे। अत: सर्वविदित 'मुचलका' के नाम पर उनकी वस्तुओं पर अधिकार कर लिया गया और कमी को पूरा करने के लिए उन वस्तुओं को उसी स्थल पर बेच दिया गया; और नागोद नाम से पुकारी जाने वाली कच्ची सिल्क का धागा बनाने वालों के साथ भी इसी प्रकार का अन्याय किया गया। इस प्रकार के भी उदाहरण मिलते हैं कि उनके अंगूठे काट दिए गए ताकि वे सिल्क के धागे न बना सकें।"[2]

बंगाल में इस पद्धति के अधीन उद्योग ही कम नहीं हुए बल्कि कृषि में भी गिरावट आई क्योंकि देश में वस्तुओं के निर्माता अधिकांशतया किसान भी होते थे।

बोल्ट्स ने यह भी कहा है कि किसानों के लिए जो साधारणतया भूस्वामी और वस्तुओं के निर्माता हैं, गुमाश्ताओं ने वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए सख्ती बरती है और गुमाश्ताओं के दमन कार्यों ने प्राय: उनको ऐसा अक्षम बना दिया है कि वे अपनी भूमि का भी सुधार नहीं कर पाए ओर दूसरी और अपनी भूमि के लगान को अदा करने के लिए उन्हें राजस्व के अधिकारियों ने दोबारा सताया और इन आततायियों के कारण प्राय: इस बात की आवश्यकता हुई कि वे अपने बच्चों तक को बेच दें ताकि वे अपने लगान अदा कर सकें अथवा देश से भाग जाएं।"

इस प्रकार बंगाल दमन का एक विराट दृश्य बना रहा। इस दु:खदायी परिस्थिति ने मीर कासिम को विद्रोह करने पर बाध्य कर दिया।

18वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में और 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में सूती, ऊनी और सिल्क के कपड़ों के अतिरिक्त भारत इंगलैंड को विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का निर्यात किया करता था, यथा—सोने या चांदी से मढ़ी कलात्मक टहलने की छड़ियां, उत्कृष्ट चीनी मिट्टी की वस्तुएं, चमड़ा और ऊन की वस्तुएं, शराब, इत्र-फुलेल, वार्निश, गोले का तेल, सींघ, रस्सी, अरारोट, चटाइयां, साबुन कागज आदि का भी निर्यात किया जाता था। 1813 और 1832 की अवधि में इंगलैंड में इन

2. 'इकनॉमिक हिस्ट्री आफ़ इंडिया', रोमेशदत्त, लंदन, खंड I, पृष्ठ 26-27, कंसीडरेशंस ऑफ इंडियन अफ़ेयर्स (लंदन, 1772) से उद्धृत।

वस्तुओं पर कर लगाए गए जो वर्ष-प्रतिवर्ष बदला करते थे। 1826 तक भारतीय कपड़ा विशेषकर सिल्क के रूमाल और सिल्क की अन्य वस्तुओं के आयात का इंगलैंड में बिलकुल ही निषेध था। अंग्रेज सरकार ने कई वस्तुओं पर ऐसे कर लगाए थे जो वस्तुओं की कीमत से कभी-कभी 100 प्रतिशत से भी अधिक थे। श्री रिचर्ड ने 1832 में संसदीय समिति के समक्ष एक वक्तव्य दिया जिससे हमें पता लगता है कि कुछ ऐसी भी वस्तुएं थीं जिनके कर इतने अधिक हो गए थे कि वे तीन हजार प्रतिशत तक ऊंचे थे। इसका अर्थ यह है कि भारत में यदि किसी भी वस्तु की कीमत एक रुपया होती थी तो उस वस्तु को इंगलैंड में 31 रुपए में बेचा जाता था। भारतीय वस्तुओं के विरुद्ध यह भेद-भाव इतना स्पष्ट था कि एक ओर इंगलैंड की बनी वस्तुएं बिना किसी कर के भारत को स्वतंत्रता से निर्यात की जाती थीं और यदि उन पर साधारण ड्यूटी भी लगाई जाती थी तो वह केवल $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत होती थी। दूसरी ओर इंगलैंड में कानूनी और सामाजिक साधन अपनाए गए थे जिनसे भारतीय आयातित वस्तुओं को हतोत्साहित किया जाता था।

भारतीय इतिहासकार एच० एच० विल्सन का कहना है: "भारत में सूती कपड़ों के व्यापार का इतिहास···है···भारत के लिए जिस देश ने दु:खद स्थिति पैदा की है उसी देश पर भारत आश्रित हो गया है। इसके साक्ष्य में यह कहा गया है कि इस अवधि (1813) तक भारत की सूती और सिल्क वस्तुएं लाभ उठाकर इंगलैंड के बाजार में बेची जा सकती थीं और उनकी कीमत इंगलैंड में तैयार की गई वस्तुओं की अपेक्षा 50 से 60 प्रतिशत कम होती थी। इसके फलस्वरूप यह आवश्यक हो गया कि इंगलैंड की वस्तुओं को बचाया जाए और इस हेतु भारत की बनी वस्तुओं की कीमतों पर 70 और 80 प्रतिशत कर लगा दिए गए अथवा निश्चित रूप से उनका निषेध कर दिया गया। यदि ऐसी स्थिति न होती और इस प्रकार के निषेधात्मक कर न लगाए गए होते और इस प्रकार की डिग्रियां विद्यमान न होतीं तो पैसली और मैनचेस्टर की मिलें अपने प्रारंभ काल में ही बन्द हो जातीं और उसके बाद शायद ही वे चल पातीं चाहे उन्हें भाप की शक्ति से ही क्यों न चलाया जाता। भारतीय वस्तुओं का बलिदान करके इन मिलों को बनाया गया था। यदि भारत स्वतंत्र होता तो वह इस नीति का विरोध करता और ब्रिटिश वस्तुओं पर निषेधात्मक कर लगाता और इस प्रकार भारत अपने उद्योग को विनाश से बचा लेता। भारत को अपनी आत्म-सुरक्षा की अनुमति नहीं थी; वह अजनबी की दया पर आश्रित था। ब्रिटिश वस्तुएं बिना किसी कर के उस पर थोप दी जाती थीं और विदेशी वस्तुओं के निर्माता राजनीतिक अन्याय का सहारा लेकर उस प्रतियोगी को अन्ततोगत्वा समाप्त कर देते थे और उनको नीचा दिखा देते थे जिनसे भारत कभी समान शर्तों पर विचार कर सकता था।"[3]

3. 'मिल्स हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया, विल्सन्स कॉन्टीन्यूएशन', पुस्तक I, अध्याय VIII टिप्पणी, 'इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया', खंड I, प्रथम भारतीय संस्करण, अक्टूबर, 1960 द्वितीय पुनर्मुद्रण, 1970, पृष्ठ 181 से उद्धृत।

इसके फलस्वरूप जबकि 1815 में भारत से 13,00,000 पौंड के मूल्य के कपड़े की वस्तुएं निर्यात की गईं तो 1832 में कपड़े की वस्तुओं के निर्यात का मूल्य 1,00,000 पौंड रह गया और जबकि 1815 में इंगलैंड से 26,300 पौंड के मूल्य की सूती वस्तुएं भारत को आयात की गईं तो इन्हीं सूती वस्तुओं का 1832 में मूल्य 4,00,000 पौंड से अधिक था।

जब ईस्ट इंडिया कम्पनी के चार्टर का 1833 में नवीकरण किया गया तो उसमें यह व्यवस्था की गई कि कम्पनी को तत्काल ही अपना सभी "वाणिज्यिक व्यापार समाप्त कर देना चाहिए और उससे हटना चाहिए" और उसे भारत में प्रशासक और शासक के रूप में काम करना चाहिए।" इस उपबंध का उपयोगी परिणाम बहुत पहले ही व्यक्त हो चुका था जबकि कई वर्ष बीत चुके थे। कम्पनी ने भारत के व्यापारों और बनी हुई वस्तुओं में अपेक्षाकृत अधिक रुचि दिखाई जबकि उसने स्वयं प्रतियोगी व्यापारी होने से अपने को रोक लिया। कम्पनी ने 11 फरवरी, 1840 को संसद में एक आवेदन पत्र प्रस्तुत किया जिसमें यह निवेदन किया गया था कि पक्षपातपूर्ण करों को हटा देना चाहिए जिनसे भारतीय उद्योग हतोत्साहित और दमित होते हैं।

हाउस ऑफ कॉमन्स की एक प्रवर समिति नियुक्त की गई जिसे इस प्रार्थनापत्र पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी थी। लार्ड सैंमोर इस समिति के अध्यक्ष थे और इस समिति के सदस्यों में श्री ग्लैड्स्टोन भी थे जो 30 वर्षीय युवक थे और एक कठोर तथा जिद्दी टोरी, मैंस्फील्ड के सदस्य, श्री ब्रौकलेहर्स्ट, जो उस समय ब्रिटिश सिल्क-निर्माण का सबसे बड़ा केन्द्र था, इस समिति के सदस्य थे और ये सदस्य ब्रिटिश विनिर्माताओं के हितों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

श्री ब्रौकलेहर्स्ट के प्रश्न का उत्तर श्री मॉन्टगोमरी मार्टिन ने दिया। श्री मार्टिन भारत में रह चुके थे और उन्होंने भारत में रहकर भारतीय समस्याओं का अध्ययन किया था और इसके अलावा डॉ० फ्रैंसिस बुशमैन ने पूर्वी भारत के संबंध में जो पर्याप्त और बहुमूल्य सांख्यिकीय लेखे पुस्तकबद्ध किए थे उसका उन्होंने संपादन भी किया था। इन्होंने दो महत्वपूर्ण वक्तव्य दिए हैं।[4]

> "हमने इस शताब्दी का चौथाई अवधि में भारतीय राज्य क्षेत्रों को इस बात पर बाध्य कर दिया है कि वे हमारी विनिर्मित वस्तुएं प्राप्त करें : कर-मुक्त हमारे गर्म कपड़े और $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत पर हमारे सूती कपड़े, और इसी अनुपात में अन्य वस्तुएं भी हैं; जबकि इसी अवधि में हमने भारतीय राज्य क्षेत्रों से पैदा की गई उन सभी वस्तुओं पर लगभग निषेधात्मक कर अथवा ऐसे कर लगाए हैं जो 10 से 20, 30, 50, 100, 500 और 1000 प्रतिशत तक बदलते रहते हैं, इसलिए यह आवाज उठी है कि भारत के साथ मुक्त

4. 'द इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', खण्ड II, रोमेश दत्त, प्रकाशन प्रभाग, भारत सरकार; भारतीय संस्करण, 1960, पुनर्मुद्रित, अप्रैल, 1970, पृष्ठ 80-81.

व्यापार किया जाए तो इस देश के साथ मुक्त व्यापार किया गया है लेकिन भारत और इस देश के बीच में मुक्त व्यापार नहीं है···सूरत, ढाका, मुर्शिदाबाद और अन्य स्थानों की देशी बनी हुई वस्तुएं क्षतिग्रस्त और विनष्ट हो चुकी हैं। इस दर्दनाक तथ्य का वर्णन नहीं किया जा सकता। मैं नहीं समझता कि ऐसा व्यापार ईमानदारी के आधार पर किया गया है। मेरा विचार है कि शक्तिवान ने अपनी शक्ति का दुरुपयोग दुर्बल को दबाने के लिए किया है।"

श्री मार्टिन ने एक दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा :

"मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि भारत एक कृषि प्रधान देश है : भारत सही प्रकार से एक विनिर्माता देश है और जो कोई भी इसे घटाकर कृषि प्रधान देश कहना चाहता है वह इसे सभ्यता के स्तर पर गिराना चाहता है। मैं नहीं समझता कि भारत को इंगलैंड का कृषि फार्म बनना है : भारत विनिर्माण करने वाला देश है। भारत युगों-युगों से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का विनिर्माण कर रहा है और कोई भी राष्ट्र उससे प्रतियोगिता नहीं कर पाया है। जहां कहीं भी भारत के साथ ईमानदारी से व्यापार किया गया है। मैं इस समय ढाका की मलमल और कश्मीर के शालों की बात नहीं करूंगा लेकिन ऐसी विभिन्न वस्तुओं की बात कहना चाहूंगा जो भारत ने विश्व के किसी भी भाग की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ ढंग से विनिर्मित की हैं। यदि भारत को केवल कृषि प्रधान देश ही मान लिया जाए तो यह कथन भारत के प्रति अन्याय है।"

जर्मन अर्थशास्त्री फ्रैड्रिक लिस्ट ने 1844 में राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर एक विशाल ग्रन्थ तैयार किया जिसमें से आगे दिया गया उद्धरण यह दिखाता है कि जहां ब्रिटिश राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने 8वीं शताब्दी के अन्त में भारत से मुक्त व्यापार के नियमों की घोषणा की वहां ब्रिटिश राष्ट्र ने उन्हें स्वीकार करने से उस समय तक इनकार किया जब तक कि उन्होंने भारत की विनिर्माण करने की शक्ति को कुचल ही न डाला। उसके बाद ब्रिटिश राष्ट्र ने मुक्त व्यापारियों जैसा रुख दिखाया और अन्य राष्ट्रों को भी मुक्त व्यापार के नियमों को स्वीकार करने के लिए आमंत्रित किया। अन्य राष्ट्रों को, जिनमें ब्रिटिश उपनिवेश भी शामिल हैं, यह अच्छी तरह मालूम था इसलिए उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए अपनी विनिर्माण शक्ति को बचाना प्रारंभ किया। लेकिन भारत में लोगों की विनिर्माण शक्ति अपने उद्योगों के विरुद्ध सुरक्षा द्वारा कुचल डाली गई और उसके बाद भारत पर मुक्त व्यापार लाद दिया गया ताकि भारत प्रतिद्वन्द्वी न हो सके :

"यदि इंगलैंड में भारतीय सूत और सिल्क की वस्तुओं के मुक्त आयात की स्वीकृति दे दी गई होती तो इंगलैंड में बनी सूती और सिल्क की वस्तुएं

आवश्यकतानुसार अपने आप ही समाप्त हो जातीं। भारत को सस्ते पारिश्रमिक पर मिलने वाले मजदूर और सस्ते कच्चे माल का ही लाभ न था बल्कि भारत के पास अनुभव, कार्यक्षमता और शताब्दियों का अभ्यास भी था। इन लाभों का प्रभाव मुक्त प्रतियोगिता की पद्धति होते हुए भी असफल नहीं हो सकता था···

तदनुसार, इंगलैंड ने भारतीय सूती और सिल्क के कपड़ों का आयात बन्द कर दिया। ये सूती और सिल्क के कपड़ों की वे किस्में नहीं थीं जो इंगलैंड अपने कारखानों में तैयार कर रहा था। यह निषेध पूर्ण और अनिवार्य था। इंगलैंड अपने देशवासियों को भारत के सूती और सिल्क के कपड़ों का एक धागा भी उपयोग करने की अनुमति नहीं देता था। इंगलैंड भारत के सुन्दर और सस्ते कपड़ों को नहीं खरीदता था बल्कि अपने देश के बने हुए घटिया और अधिक कीमती कपड़ों की खपत को ही पसंद करता था। फिर भी इंगलैंड को इस बात के लिए काफी इच्छुक था कि भारत के कहीं अच्छे बने हुए कपड़ों को कम कीमतों पर यूरोप के राष्ट्रों को सप्लाई करे और भारत के कपड़ों की सस्ती दरों से जो लाभ मिल सकता है वह महाद्वीप के अन्य राष्ट्रों को सहर्ष पहुंचाया जाए: लेकिन इंगलैंड स्वयं इसमें से कोई लाभ नहीं उठाना चाहता था।"[5]

ब्रिटिश ने अपने दमन को और भी कड़ा कर दिया तथा उसका प्रसार किया इसलिए भारत का उद्योग कम होने लगा और वह कुचल डाला गया: कारीगरों का वर्ग बिल्कुल ही बर्बाद कर दिया गया और राष्ट्र की आर्थिक शक्ति चूर-चूर हो गई। वस्तुएं बनाने वाले पुराने नगर और केन्द्र ही केवल ऐसे नहीं थे जो बर्बाद किए गए तथा उनकी जनसंख्या को भी गांव में अधिक भीड़भाड़ करने के लिए खदेड़ दिया गया बल्कि इससे भी अधिक खराब स्थिति यह रही कि हमारे पुराने गांवों की अर्थव्यवस्था के उस मूल आधार को ही प्राणघातक आघात लगा जो कृषि और घरेलू उद्योग के संघ थे। नगरों और गांवों से लाखों बर्बाद कारीगर और दस्तकार, कातने वाले, बुनकर, कुम्हार, मोची, प्रगालक, लोहार और इसी प्रकार के अन्य कामगारों के सामने कृषि कार्य में भीड़ उत्पन्न करने के सिवा कोई अन्य विकल्प नहीं था। कई भारतीय किसान जो कृषि करने के बाद बचे हुए समय में बुनाई या अन्य दस्तकारियों में लगे रहते थे, उन्हें यह लगा कि उनके ये पूरक व्यवसाय सदा के लिए समाप्त हो गए हैं। इस प्रकार भारत को बाध्य होकर विनिर्माता पूंजीवादी ब्रिटिश राष्ट्र के कृषि उपनिवेश में परिवर्तित होना पड़ा था।

5 'द नेशनल सिस्टम ऑफ पॉलिटिकल इकनॉमी', सैमसन एस० लॉयड, एम० पी० द्वारा अनूदित (लंदन 1885) पृष्ठ 42, जिसका उद्धरण रोमेश दत्त द्वारा लिखित 'इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया', खंड I (प्रथम भारतीय संस्करण, 1960. द्वितीय पुनर्मुद्रित पुस्तक, अप्रैल 1970), पृष्ठ 208-209 में उद्धृत है।

हमारे देश का कहां तक वि-उद्योगीकरण किया गया इस संबंध में कतिपय विचार प्रोफेसर अमियकुमार बागची ने अपने लेख में दिए हैं। यह लेख 1976 में 'द जर्नल ऑफ डवलपमेंट आफ स्टडीज'[6] के जनवरी में अंक में प्रकाशित किया गया था। समकालीन अभिलेखों के आधार पर प्रोफेसर बागची ने हिसाब लगाया है कि 18 लाख लोगों में से 18.6 प्रतिशत लोग गंगा की तलहटी के बिहार के पांच जिलों—पटना, गया, भागलपुर, पूर्निया और शाहाबाद के हैं। ये लोग 1809-13 में घरेलू उद्योग के द्वितीयक क्षेत्रक पर निर्भर थे। 1901 में यह अनुपात घटकर 18.5 प्रतिशत रह गया। गत 90 वर्षों में जनसंख्या की वृद्धि को देखते हुए भी कारीगरों (अधिकांशतया कातने वाले और बुनकर) की नितांत संख्या 1809-13 की तुलना में 1901 में केवल आधी ही रह गई।

आधुनिक उद्योग की संवृद्धि की वह समवर्ती प्रक्रिया जो लोगों को वैकल्पिक रोजगार देने की व्यवस्था कर सकती थी, व्यावहारिक रूप से नहीं रही। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि 1901 में गंगा की तराई के बिहार के जिलों में मुंगेर के केवल जमालपुर में एक रेलवे वर्कशाप खोली गई थी जो उन लोगों को भी काम देने के लिए नितांत अपर्याप्त थी जिन्होंने इस क्षेत्र में अपने पारंपरिक उद्योग के रोजगार खो दिए थे। यह स्थिति गंगा की तलहटी के बिहार के लोगों की रही।

19वीं शताब्दी के 7 वें दशक के प्रारंभ में ब्रिटिश सरकार ने उत्तर-पश्चिमी प्रांत (आज का उत्तर प्रदेश) में हथकरघा बुनाई की दशाओं के संबंध में जांच कराई। इससे यह विदित हुआ :

> "सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि स्थानीय विनिर्माण में स्पष्ट और दुःखद रूप से कमी आई है। यह स्थिति अपेक्षाकृत पश्चिमी जिलों में कम देखी जाती है जहां शायद शहरों और नगरों में (बाहर के गांव में नहीं) छः में से चार हथकरघों ने काम करना बंद कर दिया गया है लेकिन पूर्वी जिलों में यह व्यापार बिल्कुल ही नष्ट हो गया है और दो या तीन वर्षों में इसका पतन तीसरे हथकरघे तक पहुंच जाएगा और कुछ जिलों में आधे हथकरघे बंद हो जाएंगे; और जो बचे हुए हथकरघे हैं उनमें से अधिकांश हथकरघे भी यदा-कदा ही काम करेंगे। बुनकरों ने स्वयं खेती करना अथवा मेहनत-मजदूरी के काम शुरू कर दिए हैं और वे मॉरिशस तथा अन्य स्थानों को प्रवास कर रहे हैं, और यहां तक भी वे भीख मांगने लगे हैं।"

'इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, 1907' (खंड 3) में यह उल्लेख है : "देशी लोहा गलाने का उद्योग, रेलों से माल पहुंचने वाले क्षेत्रों में आयात किए गए लोहे

6. अमियकुमार बागची : "डी- इन्डस्ट्रियलाइजेशन इन इंडिया इन द नाइन्टीथ सेंचुरी, सम थ्योरिटिकल इम्पलीकेशन्स, द जर्नल आफ डेवलपमैंट स्टडीज', लंदन, जनवरी, 1976, खड-12, नं॰ 2, पृष्ठ 138-144.

और इस्पात के कारण, व्यावहारिक रूप से समाप्त हो गया है लेकिन यह उद्योग अभी भी प्रायद्वीप के सुदूर भागों में चल रहा है।" (पृष्ठ 132-133)। 1911 की जनगणना रिपोर्ट में कहा गया है : "धातु की वस्तुओं के व्यापारियों की संख्या में सहवर्ती वृद्धि हुई है जबकि धातु के विनिर्माताओं की संख्या में कमी हुई है। इसका मुख्यतया कारण यह है कि यूरोप से आयातित इनैमिल की हुई वस्तुओं और अल्मूनियम की वस्तुओं ने देशी पीतल और तांबे के बर्तन का स्थान ले लिया है।"

1930 तक लगभग तीन-चौथाई कारीगरों और दस्तकारों ने कृषि (50 प्रतिशत) के काम ले लिए हैं और अन्य कार्यों में (24 प्रतिशत) भी ये लगे हुए हैं तथा केवल 26 प्रतिशत कारीगर और दस्तकार अपने पारंपरिक धंधे में लगे हुए हैं। इस बात का उल्लेख किया गया है कि "इन आंकड़ों का जो संकलन तालिका में दिया गया है वह वैकल्पिक है।" 1931 की जनसंख्या रिपोर्ट में इन आंकड़ों को 'जहां तक पारंपरिक धंधे छोड़े गए हैं उस सीमा को इंगित करने के लिए' दर्शाया गया है" (पृष्ठ 403) :

तालिका 124

1931 में भारत में जातियां और व्यवसाय

जाति, जनजाति या प्रजाति	पारम्परिक धंधा	कमाने वाले और कार्यशील आश्रित व्यक्ति	वे व्यक्ति जो जीवन यापन के मुख्य साधनों के रूप में अपनी जाति के धन्धों को फिर करने लगे हैं।	वे व्यक्ति जो जीवन-यापन के मुख्य साधनों के रूप में पशु और वनस्पति के शोषण में लगे हुए हैं।
1 2	3	4	5	6
1. बढ़ई	बढ़ईगीरी	760060	336176	283300
2. चमार	खाल उतारना और चमड़े की कमाई	5075307	386197	3558939
3. दर्जी	दर्जीगीरी	212359	123687	38727
4. धोबी	धुलाई	951058	436699	345881
5. खत्ती	बढ़ईगीरी	185173	92992	17712
6. कुम्हार	मिट्टी के बर्तनों का बनाना	995300	368923	390887
7. लोहार आदि	लोहारगीरी	763482	270453	268014
8. मोमिन	बुनकर	1234393	409656	520340
9. नाई	बाल काटना	1079229	502552	351164

(क्रमशः)

1	2	3	4	5	6
10.	पिनजारा	कपास की धुनाई	1998	268	231
11.	सुनार आदि	सुनारगीरी	274134	166256	53178
12.	तांती और कोश्ती	बुनाई	427344	112571	204915
13.	तेली और घांची	तेल पिराई	1783788	383465	935926
	योग		13744625	3589895	6969314

स्रोत : भारत की जनगणना, 1931, खंड I—इंडिया, भाग II, इम्पीरियल तालिकाएं, पृष्ठ 416-17.

पालमे-दत्त भारतीय साम्यवादियों की पहली पीढ़ी में सबसे अधिक प्रसिद्ध व्यक्ति थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'मॉडर्न इंडिया' में यह बताया गया है कि 1911 और 1931 के मध्य में हमारे देश के औद्योगिक कार्यकर्त्ताओं के दल में 20 लाख की वास्तविक कमी हुई है। 1934 में महात्मा गांधी ने, जो केरल की पदयात्रा समाप्त करके लौटे ही थे, लिखा कि उद्योग की प्रगति के साथ ही, "धीरे-धीरे लेकिन वास्तव में गांव केवल जीवन-निर्वाह के लिए खेती करने पर विवश हो गए हैं।"

विदेशी शासन सत्ता ने भारत से अपने देश में आयात की गई वस्तुओं पर भारी कर लगाने की राजनीतिक सत्ता दुरुपयोग के अलावा भी इंगलैंड से हमारे देश में आयात की गई वस्तुओं पर वस्तुत: नाममात्र के कर लगाए। ऐसी परिस्थिति का मुख्य कारण यह था कि कारखानों में मशीनों से जो वस्तुएं तैयार की जाती थीं वे हाथ की बनाई हुई वस्तुओं की अपेक्षा अधिक सस्ती रहें। इसलिए कारखानों की बनी हुई वस्तुओं से प्रतियोगिता न कर सकने की दशा में कम पूंजी के छोटे-छोटे उद्यमों विशेषतया हाथ की बनी चीजों का ब्रिटिश शासन काल में लोप होने लगा जिसके फलस्वरूप कारीगर या दस्तकार गलियों में बेकार घूमने लगे।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ० के० एन० राज ने आगे दी गई तालिका 125 तैयार की है। इससे यह पता चलता है कि भारी या पूंजी प्रधान उद्योग से बेशी का निर्माण हुआ है और यह इतना अधिक है कि सभी प्रकार के उतार-चढ़ाव बाजार की अस्थिरताओं, व्यापार की नीतियों और इसी प्रकार की अन्य बातों के होते हुए भी उद्यमकर्ता को अभी भी पर्याप्त लाभ होगा जबकि अन्य प्रकार के औद्योगिक उत्पादन अलाभकारी होंगे। उदाहरणार्थ, यदि प्रतिवर्ष जमा किया गया निवल मूल्य 25 पैसे से घटाकर 12 पैसे कर दिया जाए तो कुटीर या पारंपरिक उद्योग में कोई बेशी नहीं होगी। इसके विपरीत किसी भी कामगार की मजदूरी आधी अथवा 50 पैसे तक घट जाएगी। छोटे पैमाने के उद्योग में जो बेशी निर्मित हुई है वह कम हो जाएगी और मज़दूरी की दर में लगभग 15 प्रतिशत की कटौती होगी। इसलिए कामगार और उद्यम बराबर चलते रहेंगे जबकि उद्यमकर्ता को लाभ कमाने के लिए बहुत कम या बिलकुल ही

कार्य-क्षेत्र न होगा। फिर भी बड़े पैमाने के उद्योग से काफी बेशी बचेगी जिससे कि कामगार को पूर्णतया भुगतान किया जाए और उद्यमकर्ता के लिए भी निवल आय हो सकेगी।

तालिका 125

लघु और बड़े उद्योगों की यूनिटों में लगे प्रति कामगार की बेशी की तुलना

	दस्तकारों के प्रकार (पारंपरिक) रुपए	लघु स्तर के (अर्ध-स्वचालित करघा) रुपए	बड़े स्तर के (पूर्ण स्वचालित करघा) रुपए
प्रति करघे की पूंजी लागत	50	200	10,000
एक कामगार द्वारा कार्य करने योग्य करघों की संख्या	1	1	16
प्रति कामगार की पूंजी लागत	50	200	160000
प्रतिदिन प्रति करघे का उत्पादन प्रत्येक करघे द्वारा बढा निवल मूल्य	4 गज	20 गज	80 गज
(इस पूर्वानुमान के आधार पर कि 25 पैसे प्रति गज और वर्ष में 300 काम के दिन होंगे	300	1500	96000
प्रत्येक कामगार द्वारा प्रति वर्ष बढ़ाया गया निवल मूल्य	300	1500	96000
एक कामगार द्वारा प्राय: कमाया गया वार्षिक वेतन	1 रुपए की दर से 300 रुपए	3 रुपए की दर से 900 रुपए	5 रुपए की दर से 1500 रुपए
प्रतिवर्ष प्रत्येक कामगार की बशी	शून्य	600 रुपए	94500 रुपए

स्रोत : 'इकनॉमिक वीकली', बम्बई, 14 अप्रैल, 1956, पृष्ठ 436.

यह स्पष्ट है कि पंजीकृत परियोजनाओं और उद्योगों को ऐसी वस्तुओं के निर्माण के लिए अथवा सेवाओं की व्यवस्था के लिए लगा दिया जाए जिन्हें छोटे या कुटीर पैमाने पर पहले ही काम में लाया जा रहा था और भारत के अधिकांश वर्तमान उद्योगों को इसी वर्ग में बदल दिया जाए तो इनसे देश की यथार्थ उत्पादकता में सुधार हुए बिना ही बेरोजगारी में भी वृद्धि होगी। इस प्रकार अधिकाधिक यंत्रीकृत उपक्रम जैसे-जैसे बढ़ेंगे वैसे-वैसे लोग बेरोजगार होते जायेंगे। इस प्रकार औद्योगिकीकरण में वृद्धि के बजाय अर्थात् कृषीतर व्यवसायों में अधिकाधिक कामगारों के लिए रोजगार की खोज के बजाय भारत की परिस्थितियों में आधुनिक कारखानों से अर्थ-व्यवस्था के वि-उद्योगीकरण को आवश्यक रूप से प्रोत्साहन मिला है।

ईस्ट इंडिया कम्पनी अंग्रेज सौदागरों की व्यापारिक संस्था के रूप में हमारे देश में आई थी; इस कम्पनी का प्रमुख उद्देश्य अपने भागीदारों के वित्तीय हितों तक सीमित था। मनुष्यों की किसी भी प्रजाति में मानवीय स्वभाव ऐसा नहीं है कि किसी अन्य के लिए अपने हितों का बलिदान करे। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ कम्पनी के दिनों में और उसके बाद भी वह सभी कुछ करते रहे जिससे कि भारतीय उद्योगों के विनाश की कीमत पर ब्रिटिश उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता रहे। लेकिन विदेशियों के लोभ को बनाए रखने के लिए दस्तकारी और व्यापार ने जो कुछ भी किया है वह अब आधुनिक कारखानों और स्वतंत्र भारत के लोभी नगरों की वृद्धि के कारण समाप्त हो रहा है। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद हमारे देश का यह दुर्भाग्य ही है कि हमारे राजनीतिक नेताओं ने ऐसी आर्थिक नीति अपनाई है जिससे बेरोजगारी कम या समाप्त नहीं हुई है बल्कि बेरोजगारी द्विगुणित हुई है। आर्थिक नीति वस्तुतः तत्कालीन ब्रिटिश मालिकों के चरण-चिह्नों का अनुसरण कर रही है।

तालिका 126

1956 में भारत में रोजगार में लगे लोगों की संख्या
विनिर्माण करने वाली स्थापनाओं का अनुमानित वितरण

प्रति स्थापना* लोगों की संख्या	स्थापनाओं की संख्या	रोजगार में लगे हुए लोगों की कुल संख्या (हजारों में)
5 के अन्दर	500000	10200
5—9	30000	910
10—19	43000	600
20—49	18000	560
50—99	4660	340
100—249	2550	380
250—499	840	270
500—999	470	330
1000 और इससे अधिक	580	1410
कुल	600100	15000

स्रोत: अकॉयूपेशनल पैटर्न इन मैन्यूफैक्चरिंग इन्डस्ट्रीज, 1956', योजना आयोग, भारत सरकार, 1959 पृष्ठ 45-56.
उनके लिए जिनमें 50 से कम लोग काम कर रहे हैं: पी० एन० धर एण्ड एच० एफ० लायडल, 'द रोल ऑफ स्मॉल एंटरप्राइजिज इन इंडियन इकनॉमिक डेवलपमैंट', एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1961, पृष्ठ 11.

* इनमें कार्य कर रहे मालिक और घरेलू अवैतनिक कामगार भी सम्मिलित हैं।

पीछे दी गई तालिका 126 इस अनुमान पर तैयार की गई है कि मई-नवम्बर 1955 में आयोजित राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (नवां सर्वेक्षण) के अनुसार 165 लाख लोग विनिर्माण में लगे थे और इनमें से 15 लाख लोग काम के किसी भी दिन अनुपस्थित रहते थे। ऐसी फर्मों के लिए जिनमें 50 या 50 से अधिक लोग काम पर लगाए गए और ऐसी फर्मों के लिए जिनमें 50 से कम लोग काम पर लगाए गए, इन दोनों प्रकार की फर्मों के अनुमान दोहरे लघुगणितीय सामूहिक वितरण के अन्तर्वेशन द्वारा तैयार किए गए हैं।

तालिका 126 में यह दिखाया गया है कि 1955 में 68 प्रतिशत औद्योगिक कामगार घरेलू उद्योगों में लगे हुए थे। इन उद्योगों में 5 से कम कामगार काम पर लगे हुए थे। 1971 की जनगणना ने यह दर्शाया है कि इन कामगारों की संख्या घटकर 63.5 लाख हो गई, अर्थात् 15 वर्षों की अवधि में 30 प्रतिशत हो गई। ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रिटिश सरकार को पूरी 10 दशाब्दियां अर्थात् 1757 से 1857 तक का समय लगा जबकि उन्होंने हमारे घरेलू या ग्रामीण उद्योगों को इस सीमा तक समाप्त कर दिया कि 1931 की जनगणना के अनुसार कारीगरों और कुटीर उद्योगों के कामगारों में से तीन-चौथाई लोग अपने पारंपरिक व्यवसायों को छोड़ने के लिए बाध्य कर दिए गए। स्वतंत्र भारत की सरकार ने भी 1956 से 1970 तक केवल 14 वर्ष के लिए जिसमें बची हुई कलाएं और हस्तशिल्प के लगभग 2/5 भाग समाप्त हो गए। इसका परिणाम यह हुआ कि 38.5 लाख कामगार सड़कों पर बेरोजगार फिरने लगे।

1971 की जनगणना की रिपोर्ट में 'घरेलू उद्योग' की परिभाषा दी गई है। इस परिभाषा के अनुसार परिवार का मुखिया स्वयं (पुरुष या महिला) और/अथवा घर में या ग्रामीण क्षेत्रों में गांव में ही परिवार के सदस्यों द्वारा मुख्यतया और उस घर की सीमाओं में ही, जहां शहरी क्षेत्रों में परिवार का वास है, किया जाने वाला उद्योग घरेलू उद्योग कहलाता है। ऐसा उद्योग पंजीकृत कारखाने के पैमाने पर नहीं चलाया जाना चाहिए।

आज वास्तव में गांव के लिए कृषि को छोड़कर कोई धंधा नहीं बचा है। अन्न उत्पादन के बाद कपास का उत्पादन था और कपास को विभिन्न प्रक्रियाओं में बदलकर उसका कपड़ा तैयार किया जाता था, यथा—कपास बीनना, कपास की ओटाई, चुनाई, पूनी-निर्माण, कताई-बुनाई, कपास के पैड बनाने, रंगाई और कपड़े पर छपाई आदि के कार्य किए जाते थे जिनसे ग्रामीणों को सबसे बड़ा रोजगार मिल जाता था। इन ग्रामीणों ने पुरुष और महिलाएं दोनों ही शामिल होते थे और इन रोजगारों में बढ़ई, लुहार, बुनकर, रंगरेज, छीपी, दर्जी और किसान-परिवार के महिला सदस्य लगे रहते थे। देश के अधिकांश भाग में कोई भी ऐसा किसान नहीं था जो कपास न उगाता हो और कोई भी किसान का परिवार ऐसा नहीं था जहां कपास की ओटाई और कपास की कताई चरखी या चरखे से न की जाती हो। कपास की विभिन्न प्रक्रियाओं के साथ-साथ विविध प्रकार की कई कलाएं और कुटीर उद्योग के काम भी

थे, यथा—जूता-निर्माण, मिट्टी के बर्तन और ईंटों का निर्माण जो गांव में विद्यमान थे। अब यह काम और उनके कार्यकर्ता स्थानीय, कारीगर लगभग सभी ऐसे लोग गांव से समाप्त हो चुके हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि ग्रामीण उद्योगों में रोजगार कम होता जा रहा है, रहन-सहन के स्तरों में गिरावट आती जा रही है, आत्म-निर्भरता समाप्त होती जा रही है और अधिकांश ग्रामीणों के चेहरों पर घोर निराशा झलकती है।

संगठित उद्योग में रोजगार का उल्लेख करते हुए पिछले 9 वर्षों में रोजगार की वृद्धि में कमी हो जाने और रोजगार के बाजार में युवकों की संख्या प्रतिवर्ष तेजी से बढ़ जाने के संबंध में 'टाइम्स आफ इंडिया', नई दिल्ली (31 अक्टूबर, 1975) के संपादकीय में इस प्रकार लिखा गया है :

> "इसका कुछ आंशिक दोष इस तथ्य के कारण है कि काफी संख्या में उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योग रोजगार हटाने में लगे हैं। ये उद्योग गत तीन दशाब्दियों में स्थापित किए गए हैं। जूतों के कारखानों, यंत्रीकृत बेकरियों, भोजन बनाने वाले बर्तनों, चीनी-मिट्टी के संयंत्रों, यंत्रीकृत ईंट बनाने के संयंत्रों, कपड़ा रंगने और छापने की मिलों और इसी प्रकार के अन्य उद्योगों ने लाखों मोची, बेकरी वाले, कुम्हार, लुहार, छीपी और अन्य कामगारों को समाप्त कर दिया है।"

फिर भी इसकी बर्बादी के बावजूद अवनमन-चक्र बराबर चलता रहा। पूंजीवादियों के हित में अथवा 'आधुनिकीकरण' के नाम पर मशीन प्रक्रिया के लागू करने से वर्ष में प्रतिदिन और प्रतिमास असंख्य कामगारों को रोजगार नहीं मिल पाता और वे बेरोजगार भी होते जा रहे हैं। अभी हाल ही में 10 फरवरी, 1981 को 'स्टेट्समैन', नई दिल्ली में एक रिपोर्ट प्रकाशित की गई, जिसमें एक उदाहरण दिया गया है जो इस प्रकार है : आंध्र प्रदेश तम्बाकू कम्पनी, थ्रैशिंग मशीनों के आयात पर सक्रिय विचार कर रही है, जिसके फलस्वरूप एक लाख महिला कामगार बेकार हो जाएंगी। संसद सदस्या श्रीमती पार्वतीकृष्णन ने भारत सरकार पर यह जोर दिया है कि इस लाइसेंस को रद्द कर दिए जाए।

वास्तव में आज देश में बेरोजगारी फैली हुई है और यह स्थिति 18वीं शताब्दी के अन्त से अब तक बराबर बनी हुई है लेकिन कम्पनी या ब्रिटिश शासन के दिनों की तुलना में तीन महत्त्वपूर्ण अन्तर हैं। पहला, जनसंख्या में वृद्धि हुई है जिसके फलस्वरूप यह बेरोजगारी काफी लोगों में व्याप्त है। यहां तक कि जब औद्योगिक क्रांति के सुखद दिन थे उस समय भी इंगलैंड, फ्रांस और जर्मनी में जनसंख्या की वृद्धि की दर प्रतिवर्ष 1 प्रतिशत कम रही। वर्तमान शताब्दी की प्रथम दशाब्दी में यूरोप महाद्वीप में कुल मिलाकर वृद्धि-दर 1.1 प्रतिशत तक पहुंच गई जबकि भारत (एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के अन्य विकासशील देश) में जनसंख्या की वृद्धि दर प्रतिवर्ष 2.4 प्रतिशत तक हुई। यहां विशेष रूप से यह भी कहना चाहिए

कि शायद ही कोई वर्तमान अल्पविकसित या विकासशील देश होगा जिसमें प्राकृतिक संसाधनों, पूंजी और श्रमिकों का अभाव हो। अत: यह देश उसी प्रक्रिया द्वारा आर्थिक रूप से विकसित नहीं हो सकते, जिन्हें उन्नत देशों ने आज अपनाया है। विकास का पारंपरिक पश्चिमी मॉडल, जहां कृषि-विकास ने प्रत्यक्ष रूप से शहरों को आधुनिक अथवा पूंजी सघन उद्योगों में श्रमिकों को भेजा है, अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में और अधिक कृषि अर्थव्यवस्था में लागू नहीं होते। ये अर्थव्यवस्थाएं श्रमिकों की दृष्टि से धनी हैं, लेकिन पूंजी की दृष्टि से गरीब हैं। दूसरे, भारत में अब ऐसी कोई भी भूमि नहीं है जो खाली पड़ी हो अथवा जिसका उपयोग करने के लिए प्रतीक्षा की जा रही हो, जैसी कि 18वीं और 19वीं शताब्दी में स्थिति थी, और उस समय आधुनिक कारखानों के प्रारंभ किए जाने के जो भी मजदूर बेकार हो जाते थे वे कृषि कार्य में लग जाते थे और अब स्थिति यह भी नहीं है कि लाखों शिक्षित बेरोजगारों को कृषि के काम पर लगाया जाए—चाहे कितनी ही भूमि क्यों न उपलब्ध हो। तीसरे, आज हमारे नेता ही ऐसे हैं जो पूंजीवादियों को अपने ही उन देशवासियों से मुक्त प्रतियोगिता करने की नीति के अनुसरण की अनुमति नहीं देते बल्कि उसमें सहायता देते हैं और उसे प्रोत्साहित करते हैं जबकि देशवासी अपने को बचाने की स्थिति में नहीं हैं। यह एक ऐसी नीति है जिसके भयंकर परिणाम हो सकते हैं। शायद हमारे राजनीतिक नेताओं की इस प्रवृत्ति के कारणों में से एक कारण यह भी है कि वे अपने वित्तपोषण के लिए इन्हीं पूंजीवादियों पर अधिकतर निर्भर करते हैं और इसके फलस्वरूप अपने राजनीतिक जीवन को बचाए रखते हैं।

आयोजक और अर्थशास्त्री बार-बार इस बात पर वाद-विवाद करते हैं कि क्या रोजगार, विकास और आर्थिक संवृद्धि की देन है अथवा रोजगार का पैदा करना योजना-प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। पहले जो योजनाएं तैयार की गई थीं उनमें इस समस्या को हल करने के लिए विशिष्ट कार्यक्रम नहीं बनाए गए थे। यह विश्वास किया गया था कि आर्थिक विकास और अपेक्षाकृत अधिक ऊंची संवृद्धि-दर अपने आप ही रोजगार अवसरों को उत्पन्न कर देगी। स्वतंत्रता के बाद रूढ़िवादी अथवा पारंपरिक अर्थशास्त्रियों के साथ समझौता करके नेहरू ने यह समझौता किया कि भारी पूंजी प्रधान उद्योग अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन करेगा और इसलिए अपेक्षाकृत अधिक राष्ट्रीय आय अथवा सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि होगी और यदि हमने सकल राष्ट्रीय उत्पाद के बारे में सावधानी बरती तो गरीबी और बेरोजगारी अपने आप ही ठीक हो जाएगी। इस दलील का आधार यह था कि पूंजी की उपलब्धता आर्थिक संवृद्धि की मूल शर्त है; पूंजी प्रधान उद्योगों से आय का वितरण होगा जो कुछ ही लोगों में धन के संकेन्द्रण अथवा उनके लाभों के लिए अनुकूल होगा। यद्यपि समाजवाद की क्षति के भय की दृष्टि से भी इसे जोरदार शब्दों में कभी भी स्वीकार नहीं किया गया; कि धनी व्यक्तियों का बचाने की ओर अधिक झुकाव होता है, जो

लोग पूंजी प्रधान उद्योगों से लाभ उठाते हैं वे बचतें एकत्र करने और ये बचतें आवश्यक रूप से बचतकर्ताओं अर्थात् उद्योगपतियों द्वारा स्वयं ही निवेशित की जाएगी जो इसे अपने नए बड़े या पूंजी प्रधान उपक्रमों में लगायेंगे, अथवा इन बचतों को सरकार करों के रूप में ले लेगी ताकि सार्वजनिक क्षेत्रक में उद्योगों की स्थापना की जाए और इसी प्रकार यह क्रम बराबर लंबे समय तक चलता रहेगा जब आधुनिकीकरण के लाभ होने लगेंगे और अर्थव्यवस्था अपने आप ही उत्पादक और मध्यम तथा छोटे उद्योग के लिए प्रेरक और विशाल रोजगार संभावनाओं की निर्माता होगी।

जैसा कि गत अध्याय में पहले ही बताया गया है कि जवाहरलाल नेहरू ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में, जो 28 सितम्बर, 1959 को चंडीगढ़ में आयोजित की गई थी, अपना भाषण देते हुए अपनी स्थिति को बिलकुल ही स्पष्ट कर दिया था। उन्होंने कहा : "समेकित योजना के बारे में मुख्य बात उत्पादन है, रोजगार नहीं है। रोजगार का महत्त्व है लेकिन उत्पादन के संदर्भ में इसका बिलकुल भी महत्त्व नहीं है। रोजगार उत्पादन के बाद आता है, उत्पादन के पहले नहीं आता और उत्पादन अच्छी तकनीकों से बढ़ेगा, जो आज आधुनिक तरीके हैं।"

इस प्रकार जवाहरलाल नेहरू ने हमारी योजना के उच्च लक्ष्य के रूप में राष्ट्रीय आय की वृद्धि में विचार किया है। हमारी योजनाओं में रोजगार की समस्या के कई संदर्भ होते हुए भी ऐसा विचार क्यों किया गया है—कभी बेशी रूप में इस विकास नीति के सहवर्ती या उप-उत्पादन के रूप में ही रोजगार के अवसरों का सृजन माना गया है। चौथी योजना में जो दृष्टिकोण अपनाया गया है वह इससे पूर्व योजनाओं में अभिव्यक्त विचारों की कुछ न कुछ तीखी अभिव्यक्ति है। यह भी कहा जाएगा कि भारत जैसे गरीब देश में पुर्नवितरण की नीतियों से कोई विशिष्ट परिणाम प्राप्त नहीं किया जा सकता "क्योंकि धनी वर्गों की उच्च आय से प्राप्त बेशी को काम में लाया जा सकता है और इनकी आवश्यकता भविष्य में अपेक्षाकृत अधिक उपभोग के आधार को बनाने के लिए अर्थव्यवस्था में निवेश के लिए होती है। इसलिए गरीब और कमजोर को अर्थव्यवस्था की तीव्र संवृद्धि और अन्य विशिष्ट नीति-साधनों द्वारा सहायता दी जानी है।" इसी प्रकार पांचवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में जिसमें उद्देश्यों के अध्याय के आठवें अनुच्छेद में केवल रोजगार के संबंध में ही उल्लेख किया गया है, यह उल्लेख इस प्रकार है : "अपेक्षाकृत अधिक रोजगार की व्यवस्था करना बहुत ही महत्त्वपूर्ण विचार है,...लेकिन इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि यह सुनिश्चित कर लिया जाए कि रोजगार की व्यवस्था अपने आप में ही एक लक्ष्य नहीं हो जाती। निवेश किए जाने वाले संसाधनों के उन्मूलन को बचाना चाहिए ताकि अर्थव्यवस्था आवश्यक राशि की अतिरिक्त पूंजी पैदा कर सके जिससे सभी संबंधित व्यक्तियों के उच्च जीवन-स्तर को कायम रखा जा सके।

महबूबुलहक पाकिस्तान योजना आयोग के मुख्य अर्थशास्त्री रहे हैं। उनका भी इसी प्रकार का अनुभव है। अब वे विश्व बैंक में कार्य करे रहे हैं और उन्होंने यह लिखा है कि विकासशील देशों में आर्थिक योजनाएं प्रायः किस प्रकार बनाई जाती हैं :

"विकासशील देशों में राष्ट्रीय योजनाओं पर विचार किया जाए तो यह स्पष्ट है कि योजना के उद्देश्य के रूप में रोजगार प्रायः दूसरे स्थान पर माना जाता है और वह प्राथमिक नहीं समझा जाता। इसे सकल राष्ट्रीय उत्पाद की संवृद्धि के प्रति पुनः विचार के रूप में सामान्यतया शामिल किया गया है लेकिन योजना की संरचना में बहुत कम समन्वित किया गया है। पाकिस्तान की पंचवर्षीय योजनाओं के बनाने में मेरा अपना अनुभव यह है कि रोजगार की नीति का अध्याय सदैव योजना के प्रारूप के अन्त में जोड़ा गया है ताकि योजनाओं को स्पष्ट कर दिया जाय और उन्हें पूर्ण तथा सम्मिलित रूप दिया जाय और रोजगार को संवृद्धि की संरचना का कभी भी समन्वित भाग नहीं माना गया। वास्तव में अधिकांश विकास, जिन्होंने रोजगार की स्थिति को अनुकूल ढंग से प्रभावित किया है, यथा—ग्रामीण निर्माण-कार्यों के कार्यक्रम तथा हरित क्रान्ति, योजनाबद्ध किए गए थे। अनेकानेक शोधकर्त्ताओं के दल थे जिनमें अपने और विदेश के दल शामिल थे। ये दल हमारे राष्ट्रीय लेखों को नियत कर रहे थे तथा यह सुनिश्चित कर रहे थे कि उन्होंने पर्याप्त रूप से हमारी संवृद्धि दर को रजिस्टर कर लिया है; लेकिन इस प्रयत्न का कोई भी अंश ऐसा नहीं था जो रोजगार के आंकड़ों के प्रति समर्पित हुआ हो।

"सारांश में यह कह सकते हैं कि रोजगार योजना का सौतेला बच्चा रहा है और तत्परता के साथ इस बात का अनुमान लगाया गया है कि संवृद्धि की उच्च दर पूर्ण रोजगार को सुनिश्चित कर देगी। लेकिन उस समय क्या होगा जब यही नहीं हो सकेगा ? इस शताब्दी के सातवें दशक में पाकिस्तान की नियोजित 6 प्रतिशत संवृद्धि दर से बेरोजगार बढ़ा है और यह स्थिति पूर्वी पाकिस्तान में विशेष रूप से व्याप्त है।" [देखिए, जोनेथन पॉवर एण्ड एन्नेमेयर हाल्स्टीन : 'वर्ल्ड ऑफ हंगर' (टेम्पल स्मिथ, लन्दन, पृष्ठ 82-83)]

तीव्र गति से संवृद्धि को प्राप्त करने के उद्देश्य से पूंजी में राज-सहायता दी गई है और बड़े पैमाने पर पूंजी प्रधान निवेश को बढ़ाने के लिए प्रशासकीय नियंत्रण का उपयोग किया गया है। मशीनों के आयात को शुल्क-सूची में वरीयता दी गई है और रोजगार के निहितार्थों पर उचित विचार किए बिना ही आयात के परमिट स्वीकार किए गए हैं। कभी-कभी विनिमय दर को इस सीमा तक अधिक मूल्यांकित किया गया है कि आयात की गई पूंजी वस्तुओं पर राज-सहायता लगती है। इस देश में ब्याज की दरें कृत्रिम रूप से इतनी कम रखी गई हैं कि बड़ी-बड़ी कम्पनियों को आसानी से ऋण प्राप्त हो गए हैं। समूची संवृद्धि के उप-उत्पादन के रूप में रोजगार को बहुत पीछे हटा दिया गया है। जबकि हमारी परिस्थितियों में, रोजगार को ही उद्देश्य या लक्ष्य बनाना चाहिए और कुल मिलाकर संवृद्धि को उप उत्पादन समझाना चाहिए।

जब कतिपय अर्थशास्त्रियों ने यह बताया कि बड़ी फर्में और बड़े फार्म छोटी फर्मों और छोटे फार्मों की अपेक्षा कम श्रमिकों को काम पर लगाते हैं तो अन्य अर्थ-शास्त्रियों ने जोरदार शब्दों में इसका प्रतिवाद किया और कहा कि छोटी यूनिटों में निवेश के फलस्वरूप आर्थिक संवृद्धि की दर कम होगी। उन्होंने यह तर्क दिया कि श्रम प्रधान उपक्रमों की आय कई लोगों में इस प्रकार वितरित कर दी जायेगी कि काम को आगे बढ़ाने तथा निवेश करने के लिए बहुत कम बचतें होंगी या बिल्कुल ही बचतें न होंगी। संवृद्धि की दरों को धीमा करने से उत्पन्न दीर्घकालीन समस्याएं रोजगार के किसी भी अल्पकालीन लाभ से प्रतिसादित हो जायेंगी। यह भी तर्क दिया गया कि रोजगार के सृजन और उत्पादन की वृद्धि दोनों ही एक साथ संभव हैं, इसकी आवश्यकता नहीं है कि निम्न प्रकार की प्रौद्योगिकी को स्वीकार किया जाय क्योंकि उनमें प्रारंभिक रोजगार की संभावनाएं अधिक हैं। उच्चतर प्रौद्योगिकी के साथ अपेक्षाकृत अधिक बेशी होगी और अपेक्षाकृत अधिक तीव्र गति से रोजगारों का प्रसार होगा। इसलिए नेहरू के परामर्शदाताओं के रूप में अधिकांश अर्थशास्त्रियों की प्रारंभिक प्रतिक्रिया यह थी कि रोजगार के संकट को भी निवेश के प्रकार के समान ही बढ़ाने के लिए अभी वकालत करनी है क्योंकि निवेश से पर्याप्त रोजगार नहीं पैदा होते।

अभी हाल का एक उदाहरण देखें : अर्थशास्त्री डी० एच० पाई पनंदिकर ने 20 नवम्बर, 1980 के 'हिन्दुस्तान टाइम्स', नई दिल्ली में 'ए डेवलप्ड पूअर कंट्री' नामक लेख में यह बताया है :

> "हमारे पास लगभग वही सब कुछ है जो एक विकसित देश के पास होना चाहिए। हमारे अधिकांश उद्योगों में उच्च प्रकार की जटिल प्रौद्यो-गिकी का उपयोग हो रहा है जिन्हें अनुभवी टेकनोक्रेट्स ही काम में ला सकते हैं। हम जैट इंजिनों और टरबायनों का निर्माण कर सकते हैं अथवा कोयले को उर्वरक में बदल सकते हैं; हमारे भौतिकविद नाभिकीय संगलन और विखंडन कर सकते हैं। हम विशाल बांधों और पुलों का निर्माण कर सकते हैं। थर्मल पावर स्टेशनों को बना सकते हैं, भूमंडलीय कक्षा में उपग्रह स्थापित कर सकते हैं, उच्च उत्पादन के बीजों की किस्में तैयार कर सकते हैं अथवा टैंक और जहाज बना सकते हैं। हमारे देश में विश्व का 10वां सबसे बड़ा उद्योग है और तकनीकी मानव शक्ति से निर्मित तीसरा सबसे बड़ा जलाशय है। हमारे वैज्ञानिक इंगलैंड के विश्वविद्यालयों में पढ़ाते हैं; हमारे डॉक्टर अमरीका में काम करते हैं; हमारे इंजीनियर जर्मनी में मशीनों के डिजायन तैयार करते हैं।
>
> " हमने बिजलीघर, हवाई अड्डे और नगरों के निर्माण के लिए विश्व-विख्यात बहुराष्ट्रिकों की तीखी प्रतियोगिता होते हुए भी ठेके पाने में सफलता प्राप्त की है। हमने विकासशील देशों में अतिरिक्त श्रमिकों के लिए उपयुक्त

मध्यम प्रौद्योगिकी का विकास किया है और इंडोनेशिया, मलेशिया, थाइलैंड, और इथोपिया में 200 से अधिक संयुक्त उद्यमों को स्थापित किया है।

"फिर भी हम इस तथ्य से नहीं बच सकते कि हमारा देश गरीब है और यहां के प्रति व्यक्ति की आय केवल 160 डालर है। हमारे 40 प्रतिशत से अधिक लोग अपने जीवन-निर्वाह के लिए न्यूनतम कैलोरी के खाद्य पदार्थ प्राप्त करने के भी साधन नहीं रखते और हमारे देशवासियों में से 70 प्रतिशत लोग अशिक्षित हैं।

"यह विषमता बहुत तीखी है। हमारी ही अकेली अर्थव्यवस्था नहीं है। यह नितांत दो अलग-अलग खंडों से बनाई गई है। विकसित भाग में सभी प्रकार के जटिल यंत्र, कुशाग्र-बुद्धि और कार्यकुशल लोग उत्पादन के लिए सम्पत्ति, रोजगार की व्यवस्था और निर्यात के साधन हैं। दूसरे भाग में किसान की अर्थव्यवस्था है जो गरीबी से उभरने के लिए संघर्षरत है और यह अर्थव्यवस्था अपनी प्रगति के लिए काफी बेशी उत्पन्न करने में असमर्थ है।

"असली सवाल यह है कि क्या हम उस मार्ग का प्रारंभ से फिर पता लगाएं जिसका अनुसरण विकसित देशों ने किया है जबकि हमारे पास उच्च प्रकार का ज्ञान है।

"शायद यह न्यायसंगत न होगा क्योंकि आधुनिक प्रौद्योगिकी प्रति कामगार अपेक्षाकृत अधिक पूंज़ी का उपयोग करती है और लगभग उतना ही उत्पादन देती है जितना निवेश है; उसी निवेश के अनुसार उतना ही उत्पादन है और काम पर लगाए प्रति व्यक्ति के हिसाब से अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन देने के लिए सक्षम बनाती है। वस्तुतः यही विकास का सार है। यदि उद्योग की संवृद्धि की दर अपेक्षाकृत अधिक हो तो अधिक तीव्रगति से गरीबी दूर की जा सकती है।"

श्री पनंदिकर के अनुसार काम पर लगाए गए प्रति व्यक्ति के हिसाब से अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन विकास का सार है। तथ्य तो यही है लेकिन हमारी परिस्थितियों में ऐसा नहीं हो पाता। वे यह भूल जाते हैं कि 1971 में बेरोजगारी पर भगवती कमेटी ने जो सिद्धांत अपनाए थे उनके अनुसार आज हमारे देश में बेरोजगारों की संख्या 2.5 करोड़ से अधिक होगी और प्रतिवर्ष काम करने वाले दल में जो युवक शामिल किए जाते हैं वे 45 लाख से 50 लाख तक हैं जबकि सभी कारखानों में कुल मिलाकर केवल 65 लाख लोग या इससे कुछ अधिक लोग काम पर लगाए जाते हैं। गंभीर रूप से कुछ ही विचार करने पर हमें यह पता लगेगा कि समस्त कार्यशील दल के लिए भारत में उत्पादकता की दृष्टि से रोजगार का ही कुछ अर्थ हो सकता है जबकि कुछ व्यक्तियों के लिए उच्च पारिश्रमिक पर रोजगार की उपलब्धि और बेरोजगारी का कोई अर्थ नहीं है और इसके फलस्वरूप उन बचे हुए लोगों के लिए दारुण दुःख ही है

जो कुछेक भाग्यशाली लोगों की अपेक्षा कई गुने अधिक हैं। आज हमारे देश में आधे से अधिक किसान कुल कामगारों की संख्या के 43 प्रतिशत हैं; उनके पास सीमांत जोते हैं। इन जोतों से वर्ष पर्यन्त उन्हें रोजगार उपलब्ध नहीं हो पाता; कुल कामगारों के 27 प्रतिशत से कुछ ही अधिक मजदूर कृषि मजदूर हैं और 1.5 करोड़ बेरोजगार कामगार रोजगार कार्यालयों में रजिस्टर हो चुके हैं और इस सबको भुला भी दें तो यह तो कहा ही जा सकता है कि आज हमारे देश के आधे से अधिक लोग नितांत गरीबी रेखा से नीचे गुजर-बसर कर रहे हैं : उनके बच्चे हर रात अधपेट भूखे सो जाते हैं क्योंकि उनकी क्रयशक्ति बहुत कम है जिसकी उपलब्धि उत्पादनशील रोजगार द्वारा ही की जा सकती है। दिल्ली और अन्य बड़े-बड़े शहरों की उच्च अट्टालिकाओं में रहने वाले लोग सही अर्थ में यह जानते ही नहीं कि बेरोजगारी क्या है और इसके परिणाम स्वरूप गरीबी या अकिंचनता क्या होती है।

ससैक्स विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डडले सीअर्स को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने कोलंबिया में बेरोजगारी की समस्याओं के अध्ययन के लिए तैनात किया। उन्होंने अपने अध्ययन का यह निष्कर्ष निकाला, "कुल मिलाकर केवल आर्थिक संवृद्धि को बढ़ाने से ही बेरोजगारी की समस्या के समाधान की कोशिश करने वाले कार्य को स्वत: अपनी इच्छा से हाथ में लेना है : जैसे-जैसे कोई इस लक्ष्य के पास पहुंचता है वैसे-वैसे लक्ष्य दूर होता जाता है।" फिर भी काफी समय बाद जनता पार्टी ने मार्च, 1977 में शासन सत्ता अपने हाथ में ली और जनता पार्टी के चुनाव घोषणा-पत्र के अनुसार छठी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए स्थान दिया गया लेकिन जैसा कि इस देश का दुर्भाग्य है जनता सरकार स्वयं अपने वायदों को पूरी तरह नहीं निभा पायी।

इस तथ्य पर सहमति है कि हमारी अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी तीव्र गति से बढ़ रही है। नेहरू की नीति के समर्थक यह विचार करते हैं कि हमारी अक्षमता और संस्थागत कारकों के कारण कार्यक्रमों के पर्याप्त रूप से कार्यान्वयन के अभाव के परिणामस्वरूप बेरोजगारी बढ़ी है लेकिन हमने जो नीति अपनाई है उसमें अन्तर-निहित किसी सिद्धांत की भूल से ऐसा नहीं हुआ है। किसी भी इस्पात संयंत्र को पांच वर्षों में बनाने की बजाय हम 8 वर्ष लगा लेते हैं क्योंकि हम प्रक्रियाओं, पदार्थों, परिचालन, आयातों का समन्वय करने में अक्षम हैं। हम कई क्षेत्रों की तुलना में साधारण क्षमता की अपेक्षा कम उत्पादन प्राप्त करते हैं क्योंकि हम सज्जा का अक्षमता से उपयोग करते हैं और शायद हमारी सज्जा दोषपूर्ण है क्योंकि यह सज्जा हमारे देश के अपेक्षाकृत अकुशल और अनुभवहीन लोगों ने तैयार की थी अथवा गलत विदेशी बाजारों से खरीदी गई थी। लेकिन इसके साथ ही साथ कोई व्यक्ति यह भी उत्तर

दे सकता है कि हमारे मानवीय कारक की गुणवत्ता और आवश्यक संस्थाओं की कमी अथवा उनकी अकुशलता अज्ञात बातें नहीं थीं और हमारे नेताओं को इन तथ्यों का पता होना चाहिए था ।

वस्तुत: हमारे पाठक को आगामी अध्याय में यह विदित हो जायेगा कि छोटी यूनिटों से 'कुछ या न के बराबर बचतें' उपलब्ध हो सकती हैं जो 'परिचालन और निवेश' के लिए आवश्यक हैं । यह तर्क देखने में चाहे विश्वसनीय लगे लेकिन बिल्कुल ठीक नहीं है और इसके साथ-साथ यह भी ठीक नहीं है कि यदि देश को एक यूनिट भी मान लिया जाए जहां पूंजी का अभाव नहीं है और मजदूर भी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं तो क्या वहां भी रोजगार और उत्पादन के बीच में कोई संघर्ष है अर्थात् क्या रोजगार की बराबर वृद्धि और आय की संवृद्धि में कोई संघर्ष है । सामाजिक न्याय और विकास अथवा सकल राष्ट्रीय उत्पाद को मिलाया जा सकता है । कृषि के समान ही विनिर्माण करने वाले उद्योग के क्षेत्र में कोई संघर्ष नहीं है अर्थात् उत्पादन के बढ़ाने और बेरोजगारी के दूर करने के मध्य कोई संघर्ष नहीं है । हम प्राय: एक बात भूल जाते हैं जिसे हमें याद रखना चाहिए, यथा—जबकि पूंजी सघन उद्यम अथवा उच्च प्रौद्योगिकी को अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है तो प्रति व्यक्ति अधिक उत्पादन होना चाहिए । छोटे और श्रम प्रधान उद्यम कृषि क्षेत्र में प्राय: प्रति एकड़ अधिक उत्पादन करते हैं । किन्तु कुछ विकल्प भी हैं और उद्योग के क्षेत्र में भी प्रति यूनिट निवेश करने के साथ ही साथ उत्पादन करना चाहिए और यह पिछला तरीका हमारी परिस्थितियों के अधिक अनुकूल हैं । लेकिन यदि यह मान लिया जाए कि श्रम प्रधान उद्यम उन पूंजी प्रधान उद्यमों की तुलना में पूंजी निवेश की प्रति इकाई के हिसाब से अपेक्षाकृत कम उत्पादन करें जिसका नेहरू ने समर्थन किया था तो यह प्रश्न उठता है कि क्या पूंजी की उत्पादकता ही है जो औसतन प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने में काम आएगी और इसी पर प्राथमिक रूप से विचार करना चाहिए—चाहे अन्य परिस्थितियां कुछ भी क्यों न हों । यदि वास्तव में दुविधा है (यद्यपि कोई ऐसा कारण नहीं है जिसके लिए यह सोचा जाए कि दुविधा है) तो प्रश्न इस बात का है कि उन लोगों की हानि को संतुलित किया जाए जो शेष समुदाय की सशक्त प्रगति के बावजूद बेरोजगार रह जाते हैं । हमारे देश में जहां बहुत-से लोग दशाब्दियों से वांछनीय न्यूनतम आवश्यकताओं के स्तर से कहीं नीचे रह रहे हैं, इनमें से एक का चयन करना कठिन नहीं है; हमें उन लोगों की आय और उपभोग में वृद्धि करनी है जो आय-वितरण के निम्नतम भाग पर रह रहे हैं जबकि हमें उन लोगों की आय और उपभोग के स्तर को नहीं देखना चाहिए जो उच्च आय-स्तर के हैं । जो लोग निचले स्तर पर रहते हैं उन्हें रोजगार दिलाना मूल्यवान हो सकता है क्योंकि इससे शेष समुदाय की आय में धीरे-धीरे वृद्धि हो सकती है । भारत आज भी कहीं अधिक अच्छा हो सकता है यदि हम सकल राष्ट्रीय उत्पादन की संवृद्धि की कम दर का रोजगार की वृद्धि की ऊंची दर से विनिमय कर सकें और राष्ट्रपिता के परामर्श को सुन सकें ।

आगामी तालिका में दिए गए आंकड़ों से यह विदित होगा कि ऐसा तर्क असंगत

है जिसके अनुसार पूंजी के बढ़ते हुए उपयोग पर आधारित बढ़ते हुए कारखाने का उत्पादन सानुपातिक रूप से अधिक कामों की वृद्धि कर देता है। इससे इस बात का पता चलेगा कि 1951 से 1977-78 की अवधि के दौरान 1970-71 की कीमतों के आधार पर विनिर्मित वस्तुओं से बढ़े हुए मूल्य की राशि 908 करोड़ रुपए से बढ़कर 4,001 करोड़ रुपए हो गई अर्थात् 12.8 प्रतिशत वार्षिक दर से इसकी वृद्धि हुई और कर्मचारियों की संख्या 30.39 लाख से बढ़कर 68.25 लाख हो गई अथवा 4.8 प्रतिशत वार्षिक दर की वृद्धि हुई। इस प्रकार उत्पादन और रोजगार की संवृद्धि-दर में 8:3 का अनुपात दिखाई देता है।

तालिका 127

चुनिंदा वर्षों में पंजीकृत कारखानों से संबंधित चुनिंदा आंकड़े

विवरण	1951	1955	1965	1975-76	1977-78
1. कारखानों की संख्या (यूनिटों में)	27610	33658	48350	71670	84775
2. विनिर्माताओं द्वारा करोड़ों रुपयों में जोड़ा गया मूल्य (1970-71 की कीमतों के आधार पर)	928	1205	2477	3396	4001
3. रोजगार (हजारों में)	3039	3075	4691	6242	6825

टिप्पणियां : 1. 1951 और 1955 के आंकड़े विनिर्माण उद्योगों के प्रतिदर्श सर्वेक्षण पर आधारित हैं। शेष अवधि के लिए उद्योगों के वार्षिक सवक्षण के आंकड़े उद्धृत किए गए हैं।

2. राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी जनवरी, 1979 और फरवरी, 1981 से बढ़ाए गए मूल्य के आंकड़े हैं और ये वित्तीय वर्षों का संदर्भ देते हैं।

3. रोजगार के आंकड़ों का संबंध उत्पादन कामगारों और अन्य काम पर लगाए गए कामगारों को सम्मिलित करके उनकी संख्या से है।

4. विनिर्माण उद्योगों के प्रतिदर्श सर्वेक्षण और उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण द्वारा पूरित बिजली-गैस, जल-आपूर्ति और कोल्ड स्टोरेज को छोड़ दिया गया है लेकिन रक्षा स्थापनाओं के उत्पादन को शामिल कर लिया गया है।

ऊपर दिए गए निष्कर्ष अर्थात् रोजगार (निवेश और) पूंजी प्रधान उद्योग में उत्पादन के समरूप नहीं बढ़ता जैसी कि योजना आयोग ने पुष्टि की है। छठी पंच-वर्षीय योजना 1978-83 (संशोधित), पृष्ठ 132 पर यह कहा गया है:

> "निवेश और उत्पादन ऊंची दर पर बढ़े हैं लेकिन उत्पादन-मिक्स और प्रौद्योगिकी-मिक्स इतने पूंजी प्रधान हो गए हैं कि इसके समरूप रोजगार में वृद्धि नहीं हुई है। उदाहरण के लिए 1961 और 1976 के बीच में आधुनिक कारखाना क्षेत्रक निवेश में 139 प्रतिशत और उत्पादन में 161 प्रतिशत की वृद्धि हुई है लेकिन रोजगार में केवल 71 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसलिए सकल उत्पादन के प्रति यूनिट रोजगार में 34 प्रतिशत की कमी आ गई है और पूंजी निवेश के प्रति यूनिट रोजगार में 28 प्रतिशत की कमी आ गई है।" (पृष्ठ 132)

उन व्यक्तियों के स्वप्न अवास्तविक हैं जो यह विश्वास करते हैं कि निकट भविष्य में अथवा अन्ततोगत्वा आधुनिक उद्योग से हमारी बेरोजगार और अल्प रोजगार की समस्या सुलझ जाएगी, यह स्थिति और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है जब यह महसूस किया जाता है कि जैसे-जैसे समय बीतता जाएगा, प्रौद्योगिकी की लगभग लगातार उन्नति होने के फलस्वरूप हमें अपेक्षाकृत कम लोगों की आवश्यकता होगी और कुछ मजदूर ही उतनी ही वस्तुएं तैयार कर लेंगे। उदाहरणार्थ 1961 में 445 कपड़ों की मिलों में 36,87,000 कपास की गांठों की आवश्यकता हुई और 7,22,000 कामगार काम पर लगाए गए। 1972 में कपड़ों की मिलों की संख्या बढ़कर 684 हो गई और खपत की जाने वाली कपास की गांठें बढ़कर 62,51,000 हो गईं और कामगारों की संख्या बढ़कर 7,61,000 हीं हो पायी। कपड़े के उद्योग को जो कुछ भी लाभ हुआ है, उसे आधुनिक मशीनों में लगा दिया गया है। इन मशीनों के कारण मजदूरों की संख्या कम हो गई है। इसी प्रकार की प्रवृत्तियां सीमेण्ट, कोयला और खनन जैसे अन्य उद्योगों में देखी जाती हैं।

भारत के सांख्यिकीय सारांश के अनुसार 1931 में अविभाजित भारत में कारखानों की संख्या 8,143 थी जो 1951 में भारतीय संघ में बढ़कर 34,785 हो गई अर्थात् यह संख्या चौगुनी से भी अधिक है। काम पर लगाए गए लोगों की संख्या भी 14.3 लाख से बढ़कर 29.1 लाख हो गई अर्थात् 1931 में कामगारों का दल 0.93 प्रतिशत था जो बढ़कर 1951 में 2.1 प्रतिशत हो गया। गत पृष्ठ पर जो तालिका दी गई है उसके अनुसार वर्ष 1977-78 में देश में कारखानों की संख्या बढ़कर 84,775 हो गई और इनमें लगे हुए लोग बढ़कर 68.25 लाख हो गए। इसका अर्थ यह है कि 1951 से देश में मजदूरों के दल में 950 लाख से अधिक लोग ही शामिल हुए लेकिन इनमें से बहुत कठिनाई से 4.0 प्रतिशत लोग बड़े पैमाने के उद्यमों में खपाए जा सके। आंकड़ों से यह भी विदित होता है कि सभी प्रकार के कारखानों में प्रति यूनिट कामगारों की औसत संख्या 1950 में 110 से घटकर 1978 में 80 रह गई।

अब क्या होने वाला है यह स्थिति इस तथ्य से स्पष्ट होगी कि गुजरात के महसाना जिले में 70 करोड़ रुपए के पूंजी निवेश से जो उर्वरक कारखाना खोला गया था उससे यह आशा की जाती थी कि उस कारखाने में 350 व्यक्तियों के रोजगार की व्यवस्था की जाएगी। एक प्रेस रिपोर्ट के अनुसार गुजरात राज्य में भड़ौंच जिले में 250 करोड़ रुपए की उर्वरक-परियोजना को स्थापित किए जाने का प्रस्ताव है और 1979[7] के मध्य में इस संयंत्र के चलाए जाने पर केवल 1,100 व्यक्ति सीधे ही काम पर लगा लिए जाएंगे।

ऊपर बताए गए तथ्यों और आंकड़ों में वह व्याख्या छिपी हुई है कि बड़े पैमाने की वस्तुओं के निर्मित करने वाले क्षेत्रक के शानदार विकास होने के बावजूद कृषि क्षेंत्रक में कामगारों की भागीदारी कम नहीं हुई है। योजना आयोग ने एशिया के 13 अन्य देशों का तुलनात्मक अध्ययन किया है जिसमें बर्मा को छोड़कर सभी देशों में 1965 और 1975 के बीच 10 वर्षों की अवधि में कृषि श्रमिक दल की भागीदारी में कमी आई है—यहां तक कि बंगला देश और पाकिस्तान में भी यह अनुपात 6 अंक से घटा है और 1965 में 73 अंक से घटकर 1975 में 67 हो गया है।

औद्योगिक प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ मानवीय श्रम की उत्पादकता में सुधार हुआ है। इसके साथ ही साथ किसी कामगार को काम पर लगाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक राशि की आवश्यकता होती है। वास्तव में एक कामगार को अधिक पूंजी से सहायता मिलती है और इसीलिए उसकी उत्पादकता बढ़ जाती है। इस प्रकार कम पूंजी की अर्थव्यवस्था के साथ उन्नत प्रौद्योगिकी के अपनाने से बहुत कम लोगों को रोजगार मिलेगा जबकि आय अपेक्षाकृत अधिक होगी और यह आय इस आधार पर होगी कि कई लोगों की बिल्कुल भी आय नहीं होगी। इसलिए हमारी परिस्थितियों में जहां पूंजी का अभाव है और जहां श्रमिकों की बहुतायत है वहां राष्ट्रीय हित में यह ठीक नहीं होगा कि नवीनतम उच्च स्वचालित महंगी मशीनों का उपयोग किया जाए जिनके लिए श्रमिकों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। हमारे देश में एक स्पष्ट स्थिति यह है कि श्रम प्रधान प्रौद्योगिकी को स्वीकार किया जाए। इस प्रौद्योगिकी में एक कामगार को रखने के लिए अपेक्षाकृत कम पूंजी की आवश्यकता होगी और इस प्रकार उपलब्ध पूंजी के जरिए काफी संख्या में कामगार काम पर लगाए जा सकेंगे। इसका अर्थ यह है कि भारत में पूंजी एक सीमित कारक है। हमारा आर्थिक संगठन विकसित देशों की अपेक्षा, जहां श्रम दुर्लभ संसाधन है, आवश्यक रूप से ऐसा होना चाहिए अथवा अत्यधिक रूप से ऐसा होना चाहिए कि पूंजी के अनुपात में उत्पादन अपेक्षाकृत अधिक हो।

स्वचालन और उन्नत आंकड़ा प्रक्रमण प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप आस्ट्रेलिया भी जनसंख्या की तुलना में विशाल प्राकृतिक संसाधन के होते हुए भी अपने को आजकल आर्थिक भूलभुलैयां में पाता है और आस्ट्रेलिया यह नहीं जानता कि इस

7. 'टाइम्स ऑफ इंडिया', नई दिल्ली, 3 दिसम्बर, 1975.

जटिलता में से किस प्रकार कोई मार्ग चुना जाए। इस देश में कृषि और खनन में केवल 11 प्रतिशत जनसंख्या लगी हुई है फिर भी इसके सामने यह समस्या बराबर बढ़ती जा रही है कि दीर्घ अवधि में जनसंख्या के 89 प्रतिशत भाग को उत्पादनशील रोजगार में किस प्रकार लगाया जाए। इस देश ने यह तय किया है कि सुरक्षात्मक साधनों को अपनाया जाए लेकिन यह एक अस्थायी समाधान है और इस समस्या का समाधान नहीं है। 27 अगस्त, 1980 को कंजरवेटिव सरकार ने घोषणा की (ऐसा प्रतीत होता है कि आवश्यक रूप से आस्ट्रेलिया में भी लगभग यही कारण थे) कि ब्रिटेन में बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या उसी समय 20 लाख तक पहुंच गई अर्थात् श्रमिक दल की 8.3 प्रतिशत हो गई।

इसी प्रकार की दुर्दशा का सामना पश्चिमी जर्मनी कर रहा है। इस देश में दिसंबर, 1981 में बेरोजगार व्यक्तियों की दर 4.8 प्रतिशत थी जो बढ़कर जनवरी में 5.6 प्रतिशत हो गई और इस प्रकार दिसंबर में 11,18,500 लोगों से बढ़कर 1,30,00,000 से अधिक होने के फलस्वरूप लगभग 17.4 प्रतिशत तक बेरोजगार लोगों की संख्या हो गई।

जनवरी में बेरोजगार लोगों की बताई गई संख्या में गत वर्ष इसी महीने में बेरोजगारी 10,36,500 से बढ़ी है और इस प्रकार बेरोजगार व्यक्तियों की दर गत वर्ष में 4.5 प्रतिशत से बढ़कर 26.2 प्रतिशत हो गई है।

इसके साथ ही साथ इस विचार के विपरीत महात्मा गांधी ने जो सलाह दी थी उसके बावजूद हमारे नेता आधुनिक क्षेत्रक की ओर क्यों झुक गये—इसके कारण मनोवैज्ञानिक अथवा सैद्धान्तिक हैं : कई तकनीकी विकासों ने निस्संदेह कतिपय विकसित देशों अथवा नवविकसित देशों में जहां श्रमिकों की तुलना में प्राकृतिक साधनों का अनुपात बहुत ऊंचा था, काफी लाभ पैदा किए थे और इस नूतन प्रौद्योगिकी की चमक-दमक इतनी अधिक चौंधियाने वाली थी कि इसने उन लोगों को अंधा ही कर दिया जैसा कि यह प्रौद्योगिकी गौण उत्पादन के रूप में उनकी अर्थव्यवस्था को बिगाड़ रही थी अर्थात् बढ़ते हुए रोजगार और बढ़ती हुई आय की असमानताओं के द्वारा सामाजिक मूल्य बढ़ रहे थे। वे इस बात को भूल गए कि अन्य देशों की तुलना में उनके यहां की परिस्थितियां नितांत भिन्न हैं।

इसलिए 30 वर्ष से अधिक समय पूर्व स्वराज की स्थापना के बाद भी हम अपने देश भर के नगरों और गांवों में अधिक अकिंचनता बनी रहने की समस्या का सामना कर रहे हैं। यह स्थिति एक ओर है और दूसरी ओर एकाधिकारों का उदय हो रहा है। यह कोई दुर्घटना नहीं है अपितु सचेत होकर योजना बनाने का परिणाम है।

17 वर्षों की लम्बी अवधि में भारी उद्योग को वरीयता दिए जाने की नीति रही अर्थात् 2 सितम्बर, 1946 से जब उन्होंने वस्तुतः प्रधानमंत्री का पद ग्रहण किया, जिसने हमारे देश को काफी हानि पहुंचाई है और उसके बाद जवाहरलाल नेहरू को यह समझ आई कि आखिरकार महात्मा गांधी सही थे। उन्होंने 11 दिसम्बर, 1963

को संसद में भाषण देते हुए योजना के संबंध में कहा :

> "मैं महात्मा गांधी के दृष्टिकोण के प्रति अधिकाधिक विचार करने लगा हूं···मैं पूर्णतया आधुनिक मशीन का प्रशंसक हूं और मैं सर्वोत्तम मशीनरी और सर्वोत्तम तकनीकें चाहता हूं। यद्यपि हमने तीव्रता से आधुनिक युग में कदम बढ़ाए हैं, फिर भी भारत में तथ्य यह है कि हमारे देश के अनेक लोगों को इससे लाभ नहीं हुआ है और काफी समय तक वे लोग इससे लाभ नहीं उठा सकेंगे। इसलिए कोई अन्य तरीका खोजना है ताकि वे हमारे उत्पादन में भागीदार हो सकें, चाहे आधुनिक तकनीक की तुलना में उत्पादन के औजार अधिक अच्छे न हों।"

लेकिन ऐसा विचार करने में काफी देर हो चुकी थी। वह उस समय रोगी थे जब उन्होंने यह भाषण दिया था और उसके छः महीनों बाद ही उनका निधन हो गया।

प्रोफेसर सियर्स, जिनके नाम का उल्लेख पहले ही गत पृष्ठों में किया जा चुका है, यह विश्वास करते हैं कि श्रम प्रधान तरीकों के पक्ष में उत्पादन की तकनीक को प्रभावित करना संभव है। यह कार्य कानूनी और वित्तीय साधनों द्वारा किया जा सकता है ताकि यह सुनिश्चित हो जाए कि श्रम और पूंजी की तुलनात्मक लागत शुद्ध रूप से उनकी उपलब्धता में दिखाई देती है। लेकिन विकासशील देशों में ताइवान, मिस्र, कोरिया, और यूगोस्लाविया जैसे कतिपय देशों को छोड़कर भारत जैसे देशों ने विकास के पूंजी-प्रधान और श्रम-बचत के रूप का चयन किया है। अतः प्रायः ऐसी नीतियों का अनुसरण किया जाता है जो श्रम को खर्चीला और पूंजी को सस्ता बनाती हैं जबकि वास्तव में श्रमिक अधिक होते हैं और पूंजी का अभाव होता है।

दिसम्बर, 1972 के प्रथम सप्ताह में नई दिल्ली में आयोजित वित्तीय मामलों पर लिखने वाले लेखकों के मंच से अमरीकी विकास के अर्थशास्त्री एडगर ओविन्स ने आर्थिक मामलों के पत्रकारों की अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा :

> "सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि बढ़ते हुए उत्पादन की निवेश लागत अथवा इसके लिए पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाए तो वर्धमान पूंजी-उत्पादन का अनुपात विकसित देशों में कम होना चाहिए जिसका अंशतः कारण यह है कि पूंजी का अभाव रहता है और अंशतः कारण यह भी है कि आज हम जिस स्थिति में हैं उसकी तुलना में अपेक्षाकृत अधिक लोगों को उत्पादनशील बनाने के लिए आवश्यक प्रौद्योगिकी का प्रकार तुलनात्मक रूप से सरल और सस्ता होता है।

"धनी देशों में बढ़ते हुए उत्पादन की निवेश-लागत कहीं अधिक होनी चाहिए क्योंकि जटिल प्रौद्योगिकी खर्चीली होती है। इस प्रकार कोई व्यक्ति यह आशा करेगा कि श्रम प्रधान, पूंजी-बचत ताइवान और कोरिया जैसे कम अर्थव्यवस्थाओं वाले उत्पादक देशों में निवेश की लागत कम होगी; जापान और इजराइल जैसे धनी अर्थव्यवस्थाओं वाले लगभग सभी देशों में अपेक्षाकृत अधिक होगी; और पूंजी प्रधान,-श्रम-बचत, पश्चिम के विशाल अर्थव्यवस्थाओं के उत्पादक देशों में सबसे अधिक होगी।

"जो सबसे अधिक आश्चर्यचकित करने वाली बात है और जिसे मुश्किल से अच्छी अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है वह यह है कि अनेक कम आय वाले देशों में बढ़ते हुए उत्पादन की ऊंची लागत होती है।

"निम्न तालिका से यह स्पष्ट है कि हमने मशीनों पर अधिक विश्वास किया है और लोगों पर उतना विश्वास नहीं किया है। यही कारण है कि उच्च आय वाले देश जापान और इज़राइल की तुलना में कई लातीनी देशों में बढ़ते हुए उत्पादन की निवेश लागत कहीं अधिक हो गई है; और फिलीपीन्स की अपेक्षा जापान में कम है। यद्यपि जापान बहुत अधिक धनी है अथवा ऐसी स्थिति आपके और हमारे देश की है।"

तालिका 128

विकास की पूंजी लागत

देश	डालर के हिसाब से बढ़ते हुए उत्पादन की निवेश लागत	प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद में औसत वार्षिक वृद्धि (1960-69)
	डालर	प्रतिशत
कोरिया	1.70	6.4
ताइवान	2.10	6.3
मैक्सिको	3.10	3.4
मोरक्को	3.20	3.4
फिलीपीन्स	3.50	1.9
भारत	3.90	1.1
पेरू	4.00	1.4
कोलंबिया	4.30	1.5
वेनेज्यूला	4.90	2.5
इज़राइल	2.90	5.3

(क्रमशः)

1	2	3
जापान	2.90	10.0
अमरीका	3.70	3.2
फ्रांस	4.00	4.8
नीदरलैंड	5.00	3.1

स्रोत : वर्ल्ड बैंक, 1971. आर्गेनाइजेशन फार इकनॉमिक कोऑपरेशन एण्ड डवलपमैंट, 1971; एण्ड यू० एस० एजेंसी फार इण्टरनेशनल डवलपमैंट, 1970.

एडगर ओविन्स ने यह भी बताया कि "कई वर्षों से लातीनी देशों में 5 प्रतिशत या इससे अधिक सकल राष्ट्रीय उत्पाद बढ़ रहा है और वस्तुओं का उत्पाद इससे भी अधिक ऊंची दर पर बढ़ा है लेकिन वस्तुओं के निर्माण में लगे हुए श्रमिकों का अनुपात वास्तव में कुछ कम ही हुआ है। 1950 में यह अनुपात 14.4 प्रतिशत था जो घटकर 1969 में 13.8 प्रतिशत हो गया है।

20वीं शताब्दी के सातवें दशक में मुख्य रूप से रोजगार सृजन करने में उद्योग की असफलता के कारण इन देशों में श्रमिकों की वृद्धि का 3/5 भाग आर्थिक कार्यकलापों में खपाया गया। इसके अत्यधिक विपरीत ताइवान और कोरिया के देशों में विनिर्माण के लिए जो श्रमिक काम में लगाए गए उनका अनुपात दुगुना हो गया है।

17

श्रम-नीति

विकास की नीति के रूप में भारी उद्योग को प्रथम स्थान देने की गलती के अलावा भारत की अर्थव्यवस्था एक अन्य रोग, अर्थात् हमारी श्रम-नीति से पीड़ित है।

स्वतंत्रता के पश्चात् वर्ष 1950 में अपनाए गए संविधान में भारतीय जनता ने कल्याणकारी राज्य के निर्माण का निर्णय किया था। लेकिन इस प्रकार के राज्य की स्थापना के लिए जो कुछ हमने किया है उसकी अपेक्षाकृत अधिक कठोर, बेहतर और लंबे समय तक परिश्रम करने की आवश्यकता थी। भारत की अत्यधिक जन-संख्या और तुलनात्मक रूप से लघु संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में भारत को कम-से-कम काम करके अधिक उत्पादन करने का लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए था। लेकिन औद्योगिक श्रमिकों के प्रति जो हमारी नीति रही है उससे यह स्पष्ट होगा कि वास्तव में हम यही कर रहे हैं अर्थात् कल्याण के साधनों का सृजन करने से पूर्व ही कल्याणकारी राज्य बनाना चाहते हैं अथवा उसको बनाए रखने में सक्षम आधारभूत अर्थव्यवस्था का निर्माण करने से पूर्व ही कल्याणकारी राज्य देखना चाहते हैं। किसी ने कहा है : "आज ऐसे कल्याणकारी राज्य की अपेक्षा करते हैं जिसमें वृद्धावस्था पेंशनों, बेरोजगार-बीमा, परिवार-भत्ते, स्वास्थ्य-बीमा प्रति सप्ताह 40 घंटों का कार्य और अन्य सुविधाओं की व्यवस्था हो।" इसी कारण भौतिक समृद्धि के लिए बजाय इसके कि हम अपनी जनता को इसके लिए बाध्य करते कि वे अपेक्षाकृत अधिक और अधिकाधिक मान-सिक और शारीरिक प्रयत्न करें, भौतिक समृद्धि की होड़ के फलस्वरूप लोग इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि कम काम करके उन्हें अधिक पारिश्रमिक मिले।" दिन-प्रतिदिन केवल अधिकारों की बात की जाती है और कर्त्तव्य-पालन की बात को ताक पर रख दिया गया है।

'लोकतांत्रिक' समाजवाद के दर्शन के प्रति हमारे परिवर्तन के मामलों को सुधारने के बजाय उन्हें और अधिक बिगाड़ दिया है। एक ओर इस प्रकार के समाज-

वाद के अधीन स्वैच्छिक कठोर परिश्रम के लिए प्रोत्साहन गायब हो गया है तो दूसरी ओर कामगारों को काम करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता जैसाकि रूस अथवा चीन में होता है।

आर्थिक, विशेषकर औद्योगिक विकास भारतीय नीति का मुख्य लक्ष्य रहा है। औद्योगिक विकास को एक मजबूत और स्पष्टतया परिभाषित श्रम-नीति की आवश्यकता है जिससे श्रमिक उत्पादकता बढ़े लेकिन सरकार आज तक इस प्रकार की नीति का निर्माण करने में असफल रही है। इसके विपरीत हमारे देश में कुछ श्रम-कानून बने हैं जो इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कोई सहायता अथवा प्रोत्साहन प्रदान करने के बजाय अवरोधक ही सिद्ध हो रहे हैं। ब्रिटिश सरकार भारत के औद्योगिकीकरण को गति प्रदान करने के लिए चिंतित नहीं थी इसलिए भारतीय श्रम कानूनों को उन्नत औद्योगिक राष्ट्रों के स्तर पर लाने की युक्ति देश की आर्थिक प्रगति को धीमा करने के लिए एक कपटपूर्ण चाल थी। इसलिए भारत में औद्योगिक श्रमिक प्रारंभ से ही दूसरे देशों की तुलना में उच्च स्थिति में था और उसे अधिक अधिकार और सुविधाएं प्राप्त थीं, जैसाकि देश में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय अथवा आर्थिक विकास के स्तर के संदर्भ में विदित होता है। जब भारत को स्वतंत्रता मिली तो हमारे सभी राष्ट्रीय नेता चाहे वे किसी भी राजनीतिक दल के क्यों न हों, श्रमिकों की सहायता के लिए झपट पड़े। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सिफारिशों को बिना विवाद के स्वीकार किया गया, जिसके फलस्वरूप हम एक बहुत बड़ी अनुकूल स्थिति का लाभ नहीं उठा सके अर्थात् सस्ता श्रम जो हमें प्रचुर मात्रा में प्राप्त था। यह तथ्य भुला दिया गया है कि भारत जैसे कम विकसित देशों में जहां रहन-सहन का स्तर दयनीय रूप से बहुत गिरा हुआ है वहां यह मूर्खता ही है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सिफारिशों को लागू किया जाए अथवा उन बहुत उन्नत पश्चिमी देशों के कामगारों को जो सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं, उन्हीं के अनुरूप हमारे कामगारों को भी वही सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं।

श्रम के राष्ट्रीय आयोग ने अपनी 1969 की रिपोर्ट में नियोक्ताओं का यह विचार स्वीकार नहीं किया कि औद्योगिक मजदूरी प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के अनुरूप होनी चाहिए अथवा औद्योगिक मजदूरी या कुटीर उद्योग या संबंधित उद्योग में प्राप्त उत्पादकता के स्तरों पर कमाई गई मजदूरी के समान होनी चाहिए। इसके विपरीत यह राय दी कि औद्योगिक और कृषि मजदूरी के बीच में कुछ न कुछ असमानता होना आवश्यक है और अर्थव्यवस्था की सामान्य संवृद्धि के लिए ऐसा होना भी चाहिए और मजदूरी की न्यूनाधिकताएं उत्पादकता के परिवर्तनों पर सदैव आधारित नहीं होनी चाहिए।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के कार्यान्वयन के सम्बन्ध में आयोग ने कहा कि इस अधिनियम के अन्तर्गत जो प्रक्रिया निहित है उसके अनुसार एक बार मजदूरी की कम-से-कम दरें निर्धारित हो जाने पर नियोक्ता का यह दायित्व होगा कि वह निर्धारित दरों पर मजदूरी का भुगतान करे,—चाहे उसकी क्षमता इन दरों पर

मजदूरी के भुगतान की हो अथवा न हो। साथ ही संबंधित सरकार को कम-से-कम 3 वर्षों में एक बार अथवा प्रतिकूल कीमत-स्थिति की दशा में इससे पूर्व ही मज़दूरी में संशोधन करना चाहिए। न्यूनतम मजदूरी की दरों को निर्धारित करने का मापदंड आवश्यक रूप से लचीला होना चाहिए।

आयोग ने यह भी कहा कि संगठित उद्योग के प्रत्येक कामगार को न्यूनतम मजदूरी पाने का अधिकार प्राप्त है और यह सिद्ध करना कि उद्योग इस न्यूनतम मजदूरी की अदायगी करने में सक्षम नहीं है, इसका दायित्व नियोक्ता का ही होना चाहिए।

ऊपर जो कुछ भी कहा गया है उससे श्रम और उद्योग के मध्य संबंधों के बारे में सरकार के दृष्टिकोण का पता लगता है। इस दृष्टिकोण की पुष्टि में कई कानून (जैसाकि ऊपर बताया गया है, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अलावा) बनाए गए हैं और अन्य कदम भी उठाए गए हैं जिनके अनुसार बर्खास्त किए गए कामागारों को प्रतिकर भुगतान, बोनस, उपदान राशि, भविष्य-निधि, बीमा अथवा परिवार पेंशन, प्रबंध में श्रमिकों की सहभागिता आदि शामिल हैं।

यहां हमारा यह उद्देश्य नहीं है कि इन सभी उपायों का सविस्तर उल्लेख किया जाए लेकिन हम केवल दो का उल्लेख करेंगे :

पहला, कान्ट्रैक्ट लेबर (रेगुलेशन एण्ड एबोलीशन) एक्ट, 1970 (ठेका श्रम, नियमन और उन्मूलन अधिनियम, 1970) का संबंध उन श्रमिकों से है जिन्हें कोई ठेकेदार भर्ती करता है और जिन्हें फैक्ट्री एक्ट 1948 द्वारा शासित संस्थाओं के अलावा परियोजनाओं अथवा स्थापनाओं में काम पर लगाया जाता है। इस अधिनियम में उन स्थापनाओं के अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रेशन की व्यवस्था की गई है जो ठेके पर श्रमिक को काम पर लगाते हैं। एक्ट में, ठेके पर श्रमिकों को रखने वाले ठेकेदार लाइसेंस लेने के लिए बाध्य हैं। इस अधिनियम में इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि ठेके पर श्रमिक को काम पर रखने वासे ठेकेदार और नियोक्ता को कामगारों की संख्या के अनुसार उपयुक्त प्राधिकारी के पास धन जमा करना चाहिए। इसके अलावा कुछ अन्य शर्तें भी हैं, यथा—कार्य-समय-निर्धारण, मजदूरी, कामगारों के कल्याण हेतु आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था, यथा—कैंटीन, विश्राम-कक्ष, शुद्ध पेय जल की आपूर्ति, प्रथम उपचार सेवाएं आदि। अधिनियम के अनुसार इन शर्तों का उल्लंघन कानूनी जुर्म है।

इन प्रावधानों की तुलना उस सुरक्षा और सुविधाओं से की जानी चाहिए जो एक औसत ग्रामीण को, यहां तक कि नगर-निवासी अथवा उद्योगेतर कामगार को उपलब्ध हैं।

दूसरा, 18 सितम्बर, 1972 को संघीय सरकार ने यह घोषणा की कि बोनस की वर्तमान 4 प्रतिशत न्यूनतम दर के स्थान पर सभी औद्योगिक स्थापनाओं को, चाहे वे लाभ कमा रही हों या हानि उठा रही हों—वर्ष 1971-72 से 8.33 प्रतिशत बोनस का भुगतान करना पड़ेगा।

इस प्रकार अब बोनस कोई अनुग्रही अदायगी अथवा लाभ का हिस्सा नहीं रहा है जैसा कि पहले कभी था। न ही इसमें उपभोक्ता अधिशेष अथवा अप्रत्याशित लाभ (अर्थात् युद्ध के दौरान असाधारण लाभ) के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। कामगारों का यह तर्क है कि उनकी मजदूरी निर्वाह-व्यय और उत्पादन की वृद्धियों के अनुरूप नहीं है और इस प्रकार बोनस किसी रूप में देर से दिया जाने वाला विधिसम्मत अदत्त भुगतान है, वास्तव में आस्थगित मजदूरी है। नियोक्ताओं का तर्क है कि इस कानून के अधीन निर्धारित बोनस की राशि का संबंध वास्तविक उत्पादन अथवा उत्पादकता से नहीं है और किसी भी विशेष उद्योग में बोनस के भुगतान और उसकी राशि के भुगतान के प्रश्न को दोनों पार्टियों के पारस्परिक समझौते पर छोड़ देना चाहिए था।

एक महीने के वेतन का बोनस के रूप में भुगतान करने का मुद्दा कामगारों ने शुरू नहीं किया था बल्कि केन्द्रीय श्रम मंत्रालय ने स्वयं 1971 में शुरू किया था। यह एक राजनीतिक चाल थी। अधिकांश उद्योगों में बोनस एक्ट, 1965 के अनुसार कामगार बोनस स्वीकार करते थे या नियोक्ताओं के साथ बातचीत करके अथवा नियोक्ता स्वयं अपेक्षाकृत एक्ट में उल्लिखित राशि से अधिक बोनस का भी भुगतान करते थे। लेकिन क्योंकि एक उद्योग में असंतोष था, इसलिए केन्द्रीय श्रम मंत्रालय ने यह कहना शुरू कर दिया कि इस अधिनियम में [संशोधन की आवश्यकता है और कम-से-कम न्यूनतम प्रतिशत में वृद्धि की आवश्यकता है।

घरेलू बाजार को बढ़ावा देने और विस्तार करने के लिए तथा निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए यह आवश्यक है कि हमारी खानों और कारखानों के उत्पादों की कीमतें कम दी जाएं अथवा निम्न स्तर पर रखी जाएं। मूल रूप से श्रमिकों के हठ के कारण इस प्रकार की कमी अथवा कम कीमत का अनुरक्षण बहुत कठिन पाया गया। एक ग्रमीण श्रमिक जो बेरोजगार है अथवा प्रतिदिन केवल चार रुपए मुश्किल से कमाता है, किसी कारखाने, राजकीय परिवहन सेवाओं अथवा बन्दरगाह पर प्रतिदिन 15 से 20 रुपए मज़दूरी मिल जाने पर भी काम की हड़ताल करता है क्योंकि उसे यह राशि भी अपर्याप्त लगती है। वह यह बिलकुल भूल जाता है कि कल तक वह भी उन लाखों व्यक्तियों में से ही था जोकि जो कुछ वह आज कमा रहा है उसके आधे में भी काम करने के लिए खुशी-खुशी तैयार हो जाएंगे।

कामगार के मनोविज्ञान में यकायक परिवर्तन वस्तुतः आश्चर्यजनक है लेकिन इससे भी अधिक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि वस्तुतः सरकार ने इस नीति द्वारा—वास्तव में सभी राजनीतिक दलों ने बड़े मनोयोग से इस विकास को प्रोत्साहित किया है। इस बात का उन्हें आभास नहीं होता है कि रहन-सहन के औसत स्तर में वृद्धि आवश्यक रूप से कम ही होगी, क्योंकि यह समस्त राष्ट्र की प्रति व्यक्ति वास्तविक उत्पादन की वृद्धि के साथ जुड़ी हुई है और राष्ट्रीय आय में औद्योगिक कामगारों के हिस्से में वृद्धि गरीबी रेखा के नीचे रह रहे लोगों की उपेक्षा करके ही संभव है। कदाचित् उन्हें यह भी विदित नहीं है कि जिन देशों की आवाजों या नारों का वह

अनुकरण करते हैं उन देशों से मुश्किल से किसी देश में कामगारों को हड़ताल करने का अधिकार है या उन्हें वे हित-लाभ या भत्ते प्राप्त हैं जोकि भारत में कामगारों को उपलब्ध हैं।

श्रमिक संघों पर राजनीतिक दलों का आधिपत्य होता है और कभी-कभी ये संघ कामगारों को न केवल हिंसा के लिए बल्कि उस संयंत्र को भी नष्ट करने के लिए भड़काते हैं, जो उनके जीवन-यापन का मुख्य स्रोत है। सबसे अधिक आश्चर्य-जनक बात यह है कि जैसे ही कोई हड़ताल समाप्त होती है तो कामगार प्रायः प्राधि-कारियों से यह वचन लेते हैं कि उन्हें उत्पीड़ित नहीं किया जाएगा। इस प्रश्न का कभी विश्लेषण नहीं किया गया है कि कौन पीड़ित है और कौन 'आक्रामक'। इसके विपरीत नियोक्ताओं को ऐसे कामगारों को समस्त हित-लाभों सहित पुनः काम में लगाना आवश्यक होता है। केवल इतना ही नहीं है बल्कि इस प्रकार के मामले भी सामने आए हैं जहां उत्तरदायी मंत्रियों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हड़ताल को प्रोत्साहित किया है और यह याद रखना चाहिए कि कभी-कभी ऐसे लोगों की हड़ताल को प्रोत्साहित किया है जो इस देश में औसत व्यक्ति की अपेक्षा दस गुना कमाते हैं। इन परिस्थितियों में, कोई भी अवैध हड़ताल कामगारों के लिए अब भय नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ है कि श्रमिक संघों में संगठित औद्योगिक मजदूरों ने पूर्ण राष्ट्र को यदि निष्क्रिय नहीं किया है तो कम-से-कम ललकार कर रखा है और उन्हें ऐसा करने दिया जाता है।

हड़ताल का भय और सरकारी नीति को ध्यान में रखते हुए नियोक्ताओं के सामने झुकने के अलावा कोई रास्ता नहीं होता है, क्योंकि यदि वे अवैध हड़ताल का सामना भी करें तो वह अत्यधिक खर्चीली हो सकती है। उन्हें झुकाने के लिए कई प्रकार के दबाव डाले जाते हैं। एक बात यह भी है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रारंभ से ही यह मानकर चलता है कि कामगार वार्षिक मजदूरी वृद्धियों के अधिकारी हैं—चाहे अर्थ-व्यवस्था की स्थिति कुछ भी क्यों न हो। व्यावहारिक रूप से आज कोई भी यह तर्क प्रस्तुत नहीं करता कि यदि उत्पादकता बढ़ जाए तो उसे कीमतों के घटाने के लिए लगा देना चाहिए। नियोक्ता यह सोचते हैं कि उन्हें मजदूरी में वृद्धियां करनी चाहिए और यह वृद्धियां कम-से-कम कुल मिलाकर उत्पादकता वृद्धियों के बराबर होती हैं। दूसरी बात यह है कि अति उदार समझौते पर हस्ताक्षर करना प्रायः किसी उद्यम को प्रति-योगिता करने के लिए अतिसंवेदनशील नहीं बना पाता—अनुभव ने उद्यमकर्ता को यही बताया है क्योंकि उसके प्रतियोगी भी इस प्रकार के समझौते करते हैं या निकट भविष्य में उन्हें इस प्रकार के समझौते करने पड़ते हैं। अधिकांश मामलों में नियोक्ताओं ने अपनी अधिक लागतों को अधिक कीमतों के रूप में परिवर्तित किया है। इस प्रकार पारिभाषिक रूप में समस्त सफल हड़तालों का विशेषतया बड़े-बड़े संघों द्वारा की गई हड़तालों का प्रभाव स्फीतिकारी रहा है।

दुर्भाग्य से, सार्वजनिक क्षेत्रक के उद्योगों में भी, जो हमारी मिश्रित अर्थव्यवस्था के समाजवादी क्षेत्र हैं, उत्पादकता में वृद्धि करने के प्रति श्रमिकों की प्रवृत्ति

अनुत्तरदायी है। इस प्रकार प्रायः हड़तालें, धीरे काम करो और काम बन्द करो जैसे अभियानों ने कोयला, बिजली, बैंक, एयर लाइन्स, रेलवे और बीमा जैसे मूल उद्योग और सेवाओं में भी उत्पादकता को प्रभावित किया है।

हाल के वर्षों में लोहा और इस्पात के भारी आयातों की आवश्यकता उन कठिनाइयों से हुई है जो सार्वजनिक क्षेत्रक के हमारे इस्पात संयंत्रों को झेलनी पड़ी हैं। उनका वर्तमान उत्पादन निर्धारित क्षमता से कहीं कम है जिसका मुख्य कारण खराब औद्योगिक संबंध अथवा हड़तालों की कटुता है।

'स्टेट्समैन', नई दिल्ली के हाल ही के प्रकाशन में 'पावर गेम' शीर्षक से 'श्रमिक संघों का आतंक' के संबंध में इसके विकास संवाददाता एम० बी० लाल ने निम्न प्रकार से लिखा है :

> "यह व्याधि पूर्वी क्षेत्र में अपने सबसे अधिक विषाक्त रूप में बताई जाती है यद्यपि उत्तरी क्षेत्र में भी इसका प्रभाव कम नहीं है। बड़े-बड़े सार्वजनिक क्षेत्रक यूनिटें विशेषकर राज्य बिजली बोर्ड, रेलवे, कोयले की खानें और इस्पात की मिलों को इसका सबसे अधिक शिकार माना जाता है। कुछेक क्षेत्रों में राजनीतिक दलों ने 'दादाओं और बदमाशों के शासन' को प्रोत्साहित किया है। उच्च सरकारी क्षेत्र में यह महसूस किया जाता है कि इन ताकतों का सख्ती से मुकाबला किया जाए।
>
> "केन्द्रीय मंत्रियों और राज्यों के मध्य आन्तरिक वार्तालाप और मुख्यतया राज्य बिजली बोर्डों के साथ चर्चा करने से यह विदित हुआ है कि वर्ष 1976-77 से उनके कार्य-निष्पादन में भारी कमी आ गई है जबकि आपात-कालीन स्थिति लागू थी। इसका मुख्य कारण यह बताया जाता है कि लगभग प्रत्येक स्थान पर अब "संघों ने इस स्थिति को अपने हाथ में ले लिया है।" ये संघ आपस में लड़ते हैं और जितना ही सशक्त तथा 'उत्पादकता विरोधी' संघ होगा उसके उतने ही अधिक अनुयायी होंगे।
>
> "शक्ति उद्योग की विभिन्न शाखाओं से संबंधित प्राधिकारियों की यह शिकायत है कि यह रोग फैल रहा है। 'लगभग सभी सार्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रमों में समयोपरि भत्ता' आम बात हो गई है—चाहे वह उपक्रम भारत हैवी इलैक्ट्रिकल लिमिटेड, कोल इंडिया या राज्य बिजली बोर्ड ही क्यों न हों। इसका अर्थ यह है कि व्यावहारिक रूप से सामान्य कार्य-समय में कोई काम नहीं किया जाता है। अधिकारी वर्ग गुणवत्ता या समन्वय पर जोर देने का साहस नहीं कर सकते। हिंसा—जिसमें हत्या अथवा हत्या करने की धमकी भी शामिल है, सर्वविदित है। कुछ ही दिन पूर्व उत्तर प्रदेश में एक जूनियर इंजीनियर की हत्या कर दी गई और कथित हत्यारों में उसके स्टाफ के ही सदस्य भी थे जिनके विरुद्ध उसने कठोर कार्रवाई की थी।

" केन्द्रीय शासन समस्त बिजली क्षेत्रक में बढ़ते हुए 'श्रमिक संघों के आतंक' पर व्याकुलता से नजर रखे है। भारत हैवी इलैक्ट्रिकल लिमिटेड और इंस्ट्रूमैंट लिमिटेड, कोटा की उत्पादन यूनिटों में गुणवत्ता नियंत्रण एक अंसभव बात हो गई है और दोषपूर्ण साज-सामान इसका परिणाम है। 'दादा' लोग कोयले की खानों और रेलवे संघों में शासन करते हैं। वैगन नहीं भरे जाते हैं। रेक आधे खाली होकर अपने गन्तव्य स्थानों पर पहुंच पाते हैं। बड़े पैमाने पर रेलवे के साज-सामान के अलावा कोयले की चोरी होती है और इसके अलावा अघोषित 'नियमानुसार कार्य' की स्थिति बराबर बनी रहती है। कलकत्ता पोर्ट इसका जीता-जागता उदाहरण है जहां संघ से समर्थन प्राप्त बदमाश लोग बेधड़क रद्दी लोहे के मूल्य के लिए रेलवे वैगनों को तोड़ डालते हैं। लगभग 3,500 वैगन इस प्रकार तोड़ दी गई हैं और वे सभी वैगन पोर्ट के क्षेत्र में जमा हैं तथा रेलवे ने अत्यधिक आवश्यक वस्तुओं को छोड़कर अन्य वस्तुएं पोर्ट में ले जाने से इनकार कर दिया है। अब उन वस्तुओं को बहुत अधिक लागत लगाकर जहाजों पर लादा जाता है।

" उत्तर प्रदेश में लखनऊ स्थित राज्य बिजली बोर्ड का भव्य बहुमंजिला मुख्यालय प्रदर्शन करने वाले श्रमिक संघों का स्थायी घेराबंदी का स्थान बन चुका है। उत्तर प्रदेश राज्य बिजली बोर्ड हमारे देश में दूसरा सबसे बड़ा सार्वजनिक क्षेत्रक उपक्रम माना जाता है। बोर्ड के वरिष्ठ अधिकारियों ने इस संवाददाता से पूछा, 'इस प्रकार के कार्यदल से आप कैसे आशा कर सकते हैं कि अच्छे परिणाम मिलेंगे ?'

" जिलों में बिजली बोर्ड के अधिकारी और भी अधिक भयभीत हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार या इस मामले में अन्य किसी राज्य में जाएं तो आपको इंजीनियरों के बारे में ऐसी बहुत-सी कहानियां सुनने को मिलेंगी जिनमें इंजीनियरों को उनके ही लाइनमैनों और पेट्रोलमैनों ने या तो धमकी दी है या वास्तव में इंजीनियरों को मारा-पीटा है। इस प्रकार के मामलों की पुलिस स्टेशनों में बहुत-सी प्रथम सूचना रिपोर्ट पड़ी हैं। वरिष्ठ अधिकारियों को यह कहना है कि अधिकांशतया ऐसे मामलों में पुलिस उदासीन रहती है। उनका दावा है कि जिलाधीशों के अधीन कार्यरत अधिकारियों को पुलिस संरक्षण प्रदान करती है और अन्य व्यक्तियों की अवहेलना कर देती है।

" पेट्रोलमैन की सहायता-प्राप्त लाइनमैन इस पद्धति का मुख्य अपहननकारी है। इन लोगों को यूनियन का जोरदार समर्थन प्राप्त होता है और इसके अलावा ये लोग अपने निकटवर्ती गांवों में या उनके पास ही स्थानीय रूप से प्रायः भरती किए जाते हैं और वहीं तैनात किए जाते हैं। वर्षों बाद वे अपने बड़े-बड़े निहित स्वार्थ पैदा कर लेते हैं और स्थानीय राजनीति का अभिन्न अंग बन जाते हैं और इतने सशक्त हो जाते हैं कि किसी के भी आदेश का वे पालन नहीं करते। एक मुख्य इंजीनियर के अनुसार क्षेत्र में निचले स्तर पर

काम करने वाले कार्यकर्ता साधारणतया अनुरक्षण और प्रचालन के नेमी कार्यों को भी नहीं करते हैं। नैमित्तिक बैठकों में भाग नहीं लेते।

"कार्यकर्ताओं के दल प्रतिवर्ष करोड़ों रुपए के ट्रांसफॉर्मर, कंडक्टर, तार और अन्य कीमती साज-सामान चुरा लेते हैं। सैंकड़ों विशिष्ट मामलों की रिपोर्ट पुलिस से की गई है लेकिन कुछ भी नहीं हो पाता क्योंकि स्टाफ के अपराधी व्यक्ति स्थानीय लोगों के सहयोग से यह काम करते हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान अनुशासनहीनता इतनी बढ़ गई है, यहां तक कि पुलिस भी अपने को असहाय पाती है। यदि कोई बिजली इंजीनियर अधिक सतर्क होने की कोशिश करता है उसे स्थानीय गुंडे सबक सिखा देते हैं।"

अमरीका अथवा पश्चिमी जर्मनी में एक काम गार ठीक पांच बजे ही अपना काम बन्द कर देगा और उसकी पारी समाप्त हो जाएगी—चाहे उसका काम पूरा हुआ हो अथवा न हुआ हो। लेकिन जापान में कामगार पारी समाप्ति पर भी अपने कार्य को उस समय तक नहीं छोड़ेगा जब तक कि उसे सौंपा गया कार्य पूरा न हो जाए। न ही वह कभी भी अपना समय निकम्मा बैठकर बर्बाद करेगा जो कि भारतीय कारखानों में आम शिकायत है। जापानी कामगारों की प्रवृत्ति यह होती है कि वे अपने नियोक्ताओं के हितों में योगदान करते हैं और यह तथ्य व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है तथा इसकी जड़ें बहुत गहरी हैं: उनकी अपनी कम्पनी के प्रति वफादारी पूर्णतया पौराणिक है। पांच जापानी कामगारों में से केवल एक कामगार ही प्रतिवर्ष समस्त सवेतन छुट्टियां लेता है और 40 प्रतिशत कामगार आधी या आधी से कम छुट्टियों का उपयोग कर पाते हैं। जापान ही आर्थिक रूप से उन्नत राष्ट्रों में से एक है जहां प्रति सप्ताह दो दिन की छुट्टी नहीं होती है। इस प्रकार जापानी आर्थिक पुरुत्थान के चमत्कार के पीछे अत्यधिक अनुशासनप्रिय और कठोर परिश्रम करने वाली श्रमशक्ति है। स्टालिन और माओ को अपने राष्ट्रों को अनुशासित बनाने के लिए काफी शक्ति का प्रयोग करना पड़ा था जबकि जापान की सरकार ने ऐसा नहीं किया है। अनुशासन और कार्य करने की इच्छा जापानियों के जन्मजात संस्कार हैं। फिर भी जापान पूर्णतया लोकतांत्रिक देश है। शायद ही कभी किसी ने सुना हो कि जापान में हड़ताल और तालेबंदी हुई है।

दूसरी ओर भारत में औद्योगिक कामगार उत्पादन की तनिक भी चिंता नहीं करते। वे यही सोचते हैं कि उन्हें मजदूरियों और अन्य परिलब्धियों में जो भी वृद्धियां दी गई हैं वे उनके दबाव के कारण ही उन्हें प्राप्त हुई हैं। अधिक मजदूरियों और अधिक उत्पादन के बीच तालमेल की संकल्पना अभी तक उभर नहीं सकी है।

क्या हम लोग, हमारे मजदूर नेता अथवा हमारी सरकार कभी कुछ सीख सकेगी? यदि हम साम्यवादी देशों के आधार पर शासन द्वारा बाह्य नियमन नहीं चाहते हैं और यह चाहते हैं कि हमारा देश पूर्ण गति से आर्थिक रूप से विकसित हो और हमारी लोकतांत्रिक स्वतंत्रता भी बनी रहे तो इसका केवल एक ही मार्ग है

कि हम आत्मनियमन अथवा स्वैच्छिक अनुशासन को स्वीकार करें जो देश के व्यापक हितों में सहायक होगा।

सामूहिक मजदूरी की सौदेबाजी के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है लेकिन यह पद्धति ऐसी है जो निस्संदेह कुछ हद तक अर्थव्यवस्था के आधुनिक क्षेत्रक में मजदूरी की वृद्धियों की ऊंची दर को स्पष्ट करती है। एक ओर संगठित औद्योगिक कामगार, चाहे वे निजी या सार्वजनिक रोजगार में हों, और दूसरी ओर बेरोजगार और अर्धरोजगार कारीगर, कृषक, सीमांत किसान और अन्य लोग हैं जिनके पास बहुत कम या बिल्कुल भी काम नहीं है और इसलिए न तो उन्हें मजदूरियां और न ही बोनस दिया जाता है। इन दोनों के बीच विद्यमान खाई निरन्तर बढ़ती जा रही है। औद्योगिक वस्तुएं तैयार करने वाले कामगारों की मजदूरियां और उपलब्धियां बराबर ऊंची होती जा रही हैं जबकि हमारी जनता के लगभग 80 प्रतिशत गांव में रहने वाले लोगों की आय उतनी नहीं बढ़ रही है जो इन वस्तुओं के लिए सबसे बड़ा बाजार बनाते हैं। इसका परिणाम क्या होता है? कीमतें उपभोक्ताओं के साधनों से कहीं अधिक बढ़ जाती हैं। निर्यात कम हो जाते हैं। कारखानों के गोदामों में स्टाक एकत्र होने लगते हैं। औद्योगिकीकरण की गति धीमी हो जाती है और बेरोजगारी बढ़ने लगती है।

प्रत्येक देशवासी को यह याद रखना अधिक अच्छा होगा कि मार्क्स ने बेशी मूल्य के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, जिसे श्रमिक संघों के कार्यकर्ताओं ने सतत बढ़ने वाली मजदूरियों के लिए अपने दावे का आधार बनाया है, वह सिद्धांत कई वर्ष पूर्व निर्मूल सिद्ध हो गया था। सरल भाषा में इस सिद्धांत का अभिप्राय यह है कि बेशी मूल्य किसी भी कामगार को भुगतान की गई मजूदूरी और उसके द्वारा तैयार की गई वस्तुओं के वास्तविक मूल्य का अन्तर है जिसे नियोक्ता ले लेता है और वस्तुतः यह कामगार के श्रम का अतिरिक्त मूल्य है जोकि कामगार को ही मिलना चाहिए। लेकिन वास्तव में आलोचनात्मक विश्लेषण से यह विदित होगा कि धन के रूप में यह बेशी मूल्य उस अन्तर के बराबर है जो वस्तुओं के बिक्री मूल्य और लागत मूल्य के बीच होता है और यह अन्तर उन मशीनों के कारण उत्पन्न होता है जिन्होंने वस्तुओं का विनिर्माण किया है। मानव श्रम के रूप में इस बेशी मूल्य का विनियोजन नियोक्ता ने अपने लाभ के रूप में किया है और यह उस मानव शक्ति के मूल्य के बराबर है जो मशीन के उपयोग के कारण बेकार हो जाती है और इसकी तुलना अर्थात् (इसका इससे अभिप्राय नहीं है) किसी विशेष वस्तु या वस्तुओं के उत्पादन में वास्तविक रूप से लगे कार्यकर्ता के मूल्य अथवा अतिरिक्त मूल्य से नहीं है। कामगार की क्षमता एक-सी ही बनी रहने पर भी तथाकथित 'बेशी मूल्य' की राशि मशीनोंके परिष्करण अथवा उद्योग की प्रौद्योगिकी में सुधार के साथ बढ़ती जाएगी। अपने आप में मशीन (या प्रौद्योगिकी) स्वयं आविष्कारक, प्राथमिक उत्पादकों अथवा वे लोग जिन्होंने कच्चा माल अर्थात् लोहा आदि निकाला है जिससे कि मशीन का निर्माण हुआ

है, मशीन के वास्तविक विनिर्माताओं, परिवहनकर्ताओं, बिचौलियों आदि के संयुक्त श्रम का उत्पाद है, जिसे पूंजीवादी नियोक्ता ने उस धन के बदले में खरीदा है जो उसने किसान, कारीगर और अन्य व्यक्तियों के श्रम से अर्जित किया है।

इस प्रकार अंतिम विश्लेषण से यह पता चलता है कि मशीन और इसके द्वारा पैदा किया गया बेशी मूल्य समस्त व्यक्तियों का है। इसका संबंध न केवल नियोक्ता से है जिसने मशीन खरीदी है अथवा उद्योग स्थापित किया है और न ही इसका संबंध केवल कामगार से है जिसने मशीन को प्रचालित किया है। वर्तमान पूंजी प्रधान उपक्रम से, अथवा ऐसे उपक्रम से, जो सरकार व्यापक राष्ट्रीय हित में किसी पूंजीपति को भविष्य में बनाने की अनुमति दे (उदाहरणार्थ, ऐसी वस्तुओं के उत्पादन के लिए जो लघु या कुटीर स्तर पर उत्पादित नहीं की जा सकती), प्राप्त किया गया मूल्य या तो पूर्ण रूप से करों के रूप में राजकोष में जाना चाहिए या बेहतर यह होगा कि उद्योगपति स्वयं इस मूल्य का अर्थव्यवस्था में पुनः निवेश कर दें ताकि अधिक उत्पादन किया जा सके और अपेक्षाकृत अधिक रोजगार की व्यवस्था की जा सके।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के प्रति हमारी श्रम-नीति का दूसरा पहलू बहुत ही अहितकारी निहितार्थ है जिसके विषय में हमारे देश की सरकार अथवा राजनीतिक नेताओं ने पूर्णतया तर्कसम्मत ढंग से विचार नहीं किया है। श्रम संबंधी कानून और श्रमिक संघों का ही वरद हस्त इस बात में रहता है कि हमें किस प्रकार की औद्योगिक अर्थव्यवस्था की आवश्यकता है अर्थात् उसकी संरचना क्या होगी, जबकि सरकार का इसमें वरद हस्त होना चाहिए था। हमारे देश में श्रम सस्ता है और अपेक्षाकृत मशीनरी महंगी है। अधिकांश मामलों में निजी उद्यमकर्ता एक ही मशीन पर काफी श्रम लगाकर सबसे अच्छे परिणाम प्राप्त कर सकता है। इसलिए वह अपनी लागतों को कम करने के लिए पूंजी प्रधान तरीकों की तुलना में श्रम प्रधान तरीकों को चुनेगा। फिर भी श्रमिक संघों में श्रमिकों का संगठन और श्रम तथा उद्योग के बीच संबंधों का नियमन करने वाले विभिन्न कानून मजदूरी को बढ़ाते हैं जिसके फलस्वरूप हमारे श्रम प्रधान देश में श्रम की तुलना में मशीनें सस्ती हो जाती हैं। इसलिए उद्यमकर्ता व्यावहारिक रूप से पूंजी प्रधान संरचना अर्थात् ऐसी संरचना, जिसमें तुलनात्मक रूप से कम श्रम की आवश्यकता होती है, को वरीयता देता है। इस प्रकार श्रमिक संघवाद सीधे ही देश को एक ऐसे गुण या लाभ से वंचित करता है जो उसे सस्ते श्रम के रूप में प्राप्त है और इसके कारण कामगारों की काफी संख्या रहती है। श्रमिक संघवाद और शासक दल और साथ ही गलत विपक्षी दलों की श्रम-नीति न होती तो भारत विदेशी बाजारों पर आधिपत्य जमा सकता था और अभी भी विशेषकर अनुकूल स्थान प्राप्त कर सकता है। यूरोप में अकुशल श्रम को दी जाने वाली प्रति घंटा मजदूरी भारत की तुलना में कई गुना होती है।

25 नवम्बर, 1973 को 'टाइम्स आफ इंडिया', नई दिल्ली में प्रकाशित निम्नलिखित समाचार से यह सुस्पष्ट हो जाएगा कि हमारे पास विस्तृत जन-शक्ति के रूप में बहुत बड़ी परिसम्पत्ति है।

> "चार और विदेशी फर्मों ने अपने सभी कारखाने भारत में स्थानांतरित करने का और सभी स्थानान्तरित संयंत्रों के कुल उत्पाद खरीद लेने का प्रस्ताव किया है।
>
> " उनका मुख्य उद्देश्य भारत की सस्ती कुशल श्रम शक्ति का लाभ उठाना है। चूंकि संयंत्रों के भारत में आ जाने के बाद उनके समस्त उत्पादन का निर्यात किया जाएगा अत: विदेशी मुद्रा आय पर्याप्त होगी। "

यदि श्रमिक संघवाद को सीमाओं में रखा जाता है तो हमारा सस्ता श्रम बड़े उद्योगों के लिए विदेशी बाजारों में अन्य देशों के साथ प्रतियोगिता करने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा। व्याख्यात्मक रूप में कहा जा सकता है कि यदि हम चीन के उदाहरण के ग्रुप 'डी' और 'ई' (देखिए भाग I, पृष्ठ 160) के समान ही लोगों को हटाएं या कारखानों में स्थानांतरित करें अर्थात् लोगों को ऐसे क्षेत्रों से स्थानांतरित करें जहां वर्तमान भूमि की तुलना में जनसंख्या की वृद्धि इतनी अधिक है, कि प्रति एकड़ उपज अपनी स्थिर सीमा पर पहुंच गई है तो उनके उद्योगों अथवा अन्य कृषीतर व्यवसायों में स्थानांतरण करने से कुल अन्य उत्पादन में किसी भी प्रकार के परिवर्तन न होने की संभावना है। इन क्षेत्रों में परिवार की जोतें इतनी छोटी होती हैं कि यदि परिवार के कुछ सदस्य कोई दूसरा रोजगार प्राप्त कर लें तो भी शेष सदस्य अच्छी तरह से अपनी जोत में खेती कर सकते हैं (अलबत्ता उन्हें अधिक परिश्रम करना होगा। इस तर्क में यह भी निहित है कि वे इन परिस्थितियों में अधिक परिश्रम करने के लिए सहर्ष उद्यत होंगे)। परिवार के फार्म पर कार्य छोड़ने वाले सदस्यों का लगभग सीमांत उत्पादन शून्य होगा क्योंकि यदि वे कृषि-कार्य में बने भी रहते तो भी कुल अन्य उत्पादन में कोई अंत नहीं होता। इन मजदूरों की सहायता से नए उद्योगों की स्थापना अथवा पुराने उद्योगों का विस्तार निर्यात की जाने वाली वस्तुओं को ध्यान में रखकर किया जा सकता है। इन श्रमिकों को बहुत ही कम अर्थात् केवल जीवन-निर्वाह स्तर पर ही मजदूरी देने की आवश्यकता है। इसलिए ऐसे विश्व में जहां अधिकांश देशों में श्रम महंगा है, न तो हम हार सकते हैं, न मात खा सकते हैं। लेकिन जब तक वर्तमान कानूनों में संशोधन नहीं कर दिया जाता तब तक मजदूरों की ओर से भी—चाहे ये भूमि के लिए कितने ही बेकार क्यों न हों, अपेक्षाकृत अधिक मजदूरी की मांग बराबर होती रहेगी, जिसे पूरा करना पड़ेगा और इससे वे सौदा शक्ति अर्जित करेंगे, जिसके फलस्वरूप औद्योगिकीकरण आगे नहीं बढ़ेगा या कृषि कामगार कृषीतर व्यवसायों में नहीं जाएंगे।

इस प्रकार वर्तमान श्रम कानूनों का अधिकांश रूप में संशोधन किया जाना आवश्यक है ताकि आपूर्ति और मांग के नियम प्रचलित रहें अर्थात् नियोक्ता को नए कामगारों को काम पर रखने के लिए स्वतंत्रता मिलनी चाहिए यदि वे कामगार अपेक्षा-

कृत कम मजदूरी पर काम करने के लिए तैयार हों बशर्ते श्रमिक को कोई अनुचित शोषण अथवा दुर्व्यवहार नहीं किया जाएगा और मनमाने ढंग से मजदूरों को हटाया नहीं जाएगा। राष्ट्रीय मजदूरी नीति की भी आवश्यकता होगी। मजदूरी का संबंध उत्पादकता से होना चाहिए। यदि किसी मजदूर का उत्पादन अधिक हो तो उसे अधिक मजदूरी दी जानी चाहिए। यदि किसी समाज में सर्वसत्तात्मक तरीकों को दूर किया जाता है तो वहां प्रोत्साहन होने चाहिए। यहां तक कि समाजवादी देश भी उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहनों पर निर्भर रहने लगे हैं।

भारत सरकार में सत्ता रूढ़ पार्टी के राजनीतिक हित कुछ भी क्यों न हों और यह पार्टी चाहे कुछ कहे और चाहे मजदूर नेता कुछ करें या न करें, असामाजिक प्रवृत्तियां जो श्रमिक संघों में उत्पन्न हो गई हैं, उन्हें राष्ट्रीय हित में अन्ततोगत्वा समाप्त करना होगा और कठोरता से समाप्त करना होगा। किसी के लिए भी ऐसा सोचना उचित ही था कि जनता में शिक्षा के प्रसार से मजदूर अथवा सार्वजनिक कार्यकर्ता अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति अधिक उत्तरदायी होंगे परन्तु तथ्य यह है कि शिक्षित लोगों के संघ, यथा—सार्वजनिक और निजी क्षेत्रक में अधिक वेतन पाने वाले दोनों ही लिपिक और अन्य कर्मचारी वर्ग ने श्रमिक संघों का सहारा लेने के लिए तत्परता दिखाई है और कई बार अपनी मांगों को मनवाने के लिए जनता को कष्ट में डालकर श्रमिक संघ शक्ति का वस्तुतः दुरुपयोग करने पर उतारू हो गए हैं। संघ के नेताओं के प्रति अच्छी भावनाएं और उद्बोधन से अधिक लाभ होने वाला नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि उचित सरकारी नीतियां होनी चाहिए और वे उन श्रमिकों के जो उत्पादन अथवा सेवाओं में तोड़-फोड़ की धमकी देते हैं, झगड़े तक ही सीमित न हों बल्कि इनका प्रसार श्रमिकों को छोड़कर कुछ अन्य प्रभावित पार्टियों तक भी हो—जो सही मांग का दावा करती हैं। ये पार्टियां न केवल नियोक्ता ही हैं बल्कि उपभोक्ता और सामान्य रूप से समुदाय भी हैं।

सेवा-निवृत्त जिला और सेशन जज तथा केन्द्रीय सरकार उद्योग ट्रिब्यूनल के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री पी० एस० भिंडरा ने लेखक को भेजी गई एक टिप्पणी में यह कहा है कि इसका निदान प्रशासकों के पास नहीं है :

> "हमें इस मामले पर अधिक गहराई से विचार करना होगा कि मजदूरों में अशांति क्यों रहती है और प्रबंधक इसका सामना क्यों नहीं कर पाते। इसका उत्तर सीधा और सरल है : किए गए कार्य और उसके बदले में दी गई मजदूरी के भुगतान के बीच कोई संबंध नहीं है। चाहे कोई भी कार्यकर्ता पूरे दिन मेहनत और ईमानदारी से काम क्यों न करे और उसका सहयोगी कार्यकर्ता व्यावहारिक रूप से कुछ भी न करके अपना सारा दिन बेकार ही बिता दे लेकिन मजदूरी के भुगतान के समय दोनों को समान वेतन और महंगाई भत्ता मिला करता है। ईमानदार और परिश्रमी कामगार को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया जाता बल्कि उसके सहयोगी कामगार उसका उपहास करते हैं और उसे अपने

परिहासों और भर्त्सनाओं का लक्ष्य बना लेते हैं जिसके फलस्वरूप कि वह कामगार भी सही ढंग से काम करना बंद कर देता है। हमारे श्रम संबंधी कानून ऐसे हैं कि प्रबंधक भी इसके लिए कुछ नहीं कर सकते। दुर्भाग्यवश हमारे श्रम नेता, श्रम मंत्री और श्रम नियंत्रक—जिन्होंने श्रमिकों को बहुत लाड़-प्यार किया है और जो श्रमिकों को उपदेश दिए हैं और जो इस कार्य में दिन-रात लगे हुए हैं तथा जो उत्पादन की चिंता किए बिना ही अधिकाधिक मजदूरी की मांग करते रहते हैं, उन्होंने इस स्थिति का दूसरा पहलू नहीं देखा है अथवा स्वयं पहले अपने हाथों से काम नहीं किया है। कोयला उद्योग में उजरती दर पद्धति प्रचलित थी और इस प्रकार कोयले की कभी भी कमी नहीं हुई जब तक कि उजरती दर पद्धति का उन्मूलन किया गया। कोयले की आपूर्ति की वर्तमान स्थिति सर्वविदित है यहां तक की कोयले के अभाव में रेलगाड़ियां रद्द कर दी जाती हैं, ऐसी स्थिति में निजी क्षेत्रकों उद्योगों की दशा का अंदाजा लगाया जा सकता है। मजदूर नेता और श्रम विभाग उजरती दर पद्धति के प्रति उदासीन हैं और यह दावा किया जाता है कि यह पद्धति अमानवीय और दुर्दमनीय है जबकि तथ्य यह है कि यह पद्धति अत्यधिक उन्नत देशों, यथा—स्विट्जरलैंड, पश्चिम जर्मनी और जापान के कतिपय क्षेत्रकों में विद्यमान है हालांकि वहां इस पद्धति को मानक माना जाता है। प्रत्येक वर्ग के कामगारों की कार्य-मात्रा नियत कर दी जाती है और उन्हें उनके उत्पादन के अनुसार मजदूरी का भुगतान किया जाता है। यदि उत्पादन सामान्य है तो उन्हें सामान्य मजदूरी दी जाती है और यदि प्रस्तावित, 'मानक' उत्पादन से अधिक उत्पादन हो अर्थात् 20, 30 या 40 प्रतिशत अधिक उत्पादन हो तो उन्हें अपने अतिरिक्त उत्पादन के लिए उत्पादन की प्रतिशतता में वृद्धि के अनुसार अतिरिक्त भुगतान मिला करता है। यदि प्रस्तावित सामान्य कार्य-मात्रा से कम उत्पादन हो तो कामगार को चेतावनी दी जाती है और यदि ऐसी स्थिति में कामगार अपनी कार्य-मात्रा में सुधार न कर पाए तो उसकी सेवाएं तुरन्त ही समाप्त कर दी जाती हैं। हमारे देश में वर्तमान कानून के अन्तर्गत व्यावहारिक रूप से यह असंभव है कि किसी कामगार की सेवाएं उसके उत्पादन की अपर्याप्तता के कारण समाप्त कर दी जाएं।"

यद्यपि सामाजिक और राजनीतिक आधारों पर इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया जाएगा, यहां यह संभव होगा कि हमारे देश में अधिकांश उद्योगों में उजरती दर-पद्धति लागू की जाए। यहां तक कि न्यायपालिका में भी सिविल मुकदमों, सिविल अपीलों और सैशन के मुकद्दमों में भी अलग-अलग यूनिटें निर्धारित की जाती हैं और यहां तक कि सबजज तथा जिला और सैशन जज को भी आय पैदा करने के लिए पर्याप्त संख्या में मुकदमों को निपटाना होता है जिसे हम 'मानक' अथवा प्रतिमास निर्धारित संख्या के मुकदमों का निपटान कह सकते हैं; यदि वह प्रतिमास अपेक्षित

संख्या के मुकदमों के निर्णय करने में असफल रहता है तो उसे उसकी सेवाओं से हटाया जा सकता है । इस प्रकार जबकि उच्च मेधावी और उत्तरदायी व्यक्तियों के लिए भी उजरती दर-पद्धति को लागू करना संगत और उचित है तो कोई कारण नहीं कि इस प्रकार की पद्धति को अनाचरणपूर्ण, बर्बरतापूर्ण, अनैतिक या दुर्दमनीय समझा जाए जब इस पद्धति को औद्योगिक कामगारों में लागू करना हो ।

सस्ता श्रम हमारी सबसे बड़ी परिसम्पत्ति है और राष्ट्रीय हित में तथा श्रम के हित में इसे बर्बाद नहीं होने देना चाहिए । इसके उपयोग से रोजगार के अवसर बढ़ेंगे, आर्थिक संवृद्धि की दर में वृद्धि होगी, आय-असमानताएं घटेंगी और निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन मिलेगा ।

तीसरा भाग

18

गांधीवादी दृष्टिकोण

यदि देश को बचाना है तो नेहरू की नीति के स्थान पर गांधीवादी दृष्टिकोण का अनुसरण करना होगा। इसका अर्थ यह है कि हमें अपनी मुक्ति के लिए गांधी के दृष्टिकोण को स्वीकार करना होगा। उनके विचार की प्रबल संगतता न केवल भारत, 1980 के लिए ही श्रेयस्कर है बल्कि 2000 ईसवी बाद के भारत के लिए भी है। भारत ने 1947 में बड़ी भारी भूल यह की कि गांधी के बताए मार्ग को बिलकुल ही छोड़ दिया और पाश्चात्य पद्धति, केन्द्रीकरण, शीर्ष से लेकर निम्न तक आदेश-पद्धति को स्वीकार किया है और यह नीति आज भी जारी है। सामान्य विचार के विपरीत गांधीवादी विचार में उस बड़े पैमाने या मशीनों के उद्यम को छोड़ा नहीं गया है जिससे आज आधुनिक समाज बिलकुल अलग नहीं किया जा सकता। गांधीवादी विचारों के अनुसार बड़ी यूनिटों की तुलना में छोटी यूनिटों को वरियता दी जाएगी और जहां कहीं संभव होगा वहां आवश्यकतानुसार उन्हें बड़ी यूनिटों में परिवर्तित कर दिया जाएगा। गांधीजी ने हमारे अपने संसाधन की प्रचुरता और हमारी अपनी तकनीकों तथा कम पूंजी और अतिरिक्त श्रम की हमारी परिस्थितियों के अनुकूल बनाने वाली तकनीकों के आधार पर भारतीय अर्थ व्यवस्था की समृद्धि का अनुमान लगाया था। हमें अपने देश की थाती के अनुसार ही उपयुक्त नीति का चयन पूर्णतः करना था और उसे निर्धारित करना था। उन्होंने आत्मनिर्भरता को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की और व्यापक रूप भी केन्द्रित आधार पर उत्पादन के संगठन का समर्थन किया जो स्थानीय न्यासों और प्रतिभाओं का अधिकतम उपयोग कर सकेंगे।

फिर भी, दुर्भाग्यवश हमारे स्वातंत्र्योत्तर नेतृत्व के अलग ही विचार और दृष्टिकोण थे। इसलिए इस नेतृत्व में देश की आर्थिक योजनाएं अधिकांशतः विदेशी प्रौद्योगिकी के सहारे चलाई जाने लगीं। हमारी घरेलू सामाजिक और आर्थिक दशाओं के बीच असंगतता है और इस प्रकार की विदेशी प्रौद्योगिकी के परिणाम उन्हें मालूम नहीं

हुए। उस समय इस्पात बहुत कम मिलने वाली वस्तुओं में से एक थी जिसका स्थान लकड़ी और बांस ने ले लिया। सीमेंट के स्थान पर चूना काम में लाया जाने लगा और कर्षण और विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में पेट्रोल और पेट्रोल पदार्थों ने विस्तृत भूमिका अदा करनी शुरू कर दी जिसके फलस्वरूप कोयले का खर्च बढ़ गया। जैविक खाद के बदले में रासायनिक उर्वरकों को प्राथमिकता दी जाने लगी और उर्वरकों के तैयार करने में भी कोयले की अपेक्षा नेफ्था को वरीयता दी जाने लगी।

इस प्रकार गांधी जी के नुस्खे जानबूझकर और धीरे-धीरे परिवर्तित होने लगे। आत्मनिर्भरता की आवश्यकताओं की पूर्णत: अवहेलना कर दी गई। विदेशी प्रौद्योगिकी हमारी आर्थिक पद्धति में मिला दी गई और इस प्रकार हमारे अपने-अपने क्षेत्रों के संस्थानों की उपलब्धताओं के विशाल अन्तरों की ओर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया गया।

ऐसा योगदान, जो व्यक्ति अलग-अलग अपेक्षाकृत अधिक राष्ट्रीय आय और अपेक्षाकृत अधिक वस्तुओं और सेवाओं की व्यवस्था के रूप में कर सकते थे, पूर्णतया कम हो गया। इसके स्थान पर शासन की भूमिका और उसकी क्षमता इस दिशा में बहुतायत से बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई कि इतनी विशाल और जटिल सामाजिक आर्थिक समस्याओं के निराकरण में इसका क्या योगदान हो सकता है। राजकीय पहल और इसमें निहित विशाल परियोजनाओं पर समस्त बल दिया जाने लगा और प्रत्येक मामले में विदेशी प्रौद्योगिकी का आयात, जिसके साथ विदेशी आधारभूत संसाधन भी थे—चाहे वह प्रारंभिक ही क्यों न हों, उन्हें काम में लाया गया और वहां उन्हें माध्यम भी बनाया गया। अन्य देशों में रोजगार बनाए गए और हमारे देश के लोगों पर बेरोजगारी लादी गई।

आर्थिक संवृद्धि की हमारी नीति के दुःखद अभिनवीकरण से असर यह हुआ कि हमारे देश में एक ऐसा अधिक शक्तिशाली वर्ग बन गया जिसने सभी प्रकार की वस्तुओं के आयात में निहितार्थ बढ़ा लिया, जिसमें अविवेकी ढंग से विदेशी प्रौद्योगिकी का आयात भी शामिल है। बढ़ा-चढ़ाकर ऐसे तरीके बताए जाने लगे, जिनसे देश की प्रगति में तीव्रता लाई जा सकेगी।

इस प्रकार हमें एक ऐसा महल मिला है जिसका आधार उस महल को कोई समर्थन नहीं देता। हमारे करोड़ों लोग इस संवृद्धि की प्रक्रिया से लाभ नहीं उठा सके हैं और भागीदार नहीं हो सके हैं। वास्तव में यदि कहा जाए तो हमारे संसाधनों में लगातार कमी आती रही है। सभी स्तरों पर मांगें कम होती गई हैं और सभी प्रोत्साहन और पहल कुचल दिए गए हैं। इस मार्ग की अंतर्रचना में चतुर्मुखी संकटावस्था आ गई है।

हमारी बढ़ती हुई आर्थिक संकटावस्था की अशुभ पहल इस परिवर्तन की वास्तविक अभिसूचक है और यह स्थिति आज गांधी जी के दिखाए गए मार्ग से कहीं अलग हटकर है। गांधी जी का दृष्टिकोण सरल और स्पष्ट था और लोगों को संपत्ति पैदा करने के लिए प्रेरक था। लोगों को ग्रामीण और जैविक खाद अपने आप ही विकसित

करनी थी। उन्हें असंख्य छोटी-छोटी परियोजनाओं के लिए नहरें खोदनी थीं और विजली का उत्पादन करना था। लोगों को यथासंभव अपनी पहल के आयाम को बढ़ाना था। यदि आवश्यकता है तो हम पूंजी प्रधान परियोजनाओं को हाथ में ले सकते हैं लेकिन इन परियोजनाओं का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि वे स्थानीय संसाधनों द्वारा चलाई जा सकें।

जब भारत अनायास ही गांधी-मार्ग को छोड़ बैठा तो उसके दुःखद परिणाम हुए। ठीक इसी समय अन्य देशों विशेषत: चीन, वियतनाम और तंजानिया ने शेष संसार को यह दिखा दिया कि उन्हें गांधी के विचार के अनुकूल योजना चलाने में कितना लाभ हुआ है। इस योजना के अनुसार कृषि और उद्योग की छोटी-छोटी यूनिटों पर विशेष बल दिया जाना था। गांधी का मार्ग मूलत: सघन कृषि अर्थव्यवस्था के लिए सही मार्ग था और कम से कम यह मार्ग देश के प्राथमिक विकास के लिए सही था।

चीन प्रारम्भ में रूस पर निर्भर था लेकिन चीन ने रूस के आश्रय से अपने को तत्काल ही स्वतन्त्र कर लिया। चीन ने किसी से कोई समझौता नहीं किया और जब माओ का देहान्त हुआ तो चीन किसी का कर्जदार नहीं था और इस देश में बेरोजगारी की समस्या व्यापक रूप से हल हो चुकी थी। वियतनाम की इसी प्रकार की उपलब्धियां भी विशेष उल्लेखनीय हैं। राष्ट्रपति नियरेरे के अधीन तंजानिया ने भी एक ऐसा प्रामाणिक आदर्श उपस्थित किया है जो योजना के प्रति गांधीवादी दृष्टिकोण के मुख्य सिद्धान्तों के सफल उपयोग को दर्शाता है। यह सही है कि चीनवासी कठोर साधन अपना रहे हैं और इसी प्रकार के कठोर साधन वियतनाम के देशवासियों ने स्वीकार किए हैं लेकिन ये देश भारत के समान स्वतंत्र समाजों की तरह नहीं हैं किन्तु आर्थिक परिस्थितियों को राजनीतिक अत्याचार का स्थान लेने के लिए बढ़ाया जा सकता है। कानूनी संरक्षण श्रम-प्रधान प्रौद्योगिकी वाले उद्यमों को उपलब्ध किया जा सकता है और व्यापार की शर्तें उस आर्थिक नीति के पक्ष में बदली जा सकती हैं यदि कोई सरकार अपने तरीके से उनका चयन करे और वह सरकार सर्वसत्तात्मक न हो।

ठोस विचार यह है कि आर्थिक सीमा पर हमारी असफलता के दो मुख्य कारण हैं: उद्योग और कृषि के मध्य वित्तीय पूंजी का गलत आवंटन और बड़ी-बड़ी मशीनों के उपयोग का प्रारम्भ अथवा उनकी वृद्धि। इस प्रकार इनके दो मुख्य समाधान हैं। कृषि के पक्ष में आवंटन का संशोधन और यथासम्भव बड़ी-बड़ी मशीनों का बहिष्कार। प्रथम निदान के अंतर्गत ग्रामीण विकास पर सबसे अधिक जोर दिया जाना है और दूसरे निदान के अनुसार विदेशी पूंजी और विदेशी प्रौद्योगिकी को छोड़कर आत्मनिर्भरता के अपनाने का निर्णय किया जाना। यह ऐसी व्यवस्था है जो हमारे कारक न्यास द्वारा बताई गई है।

वास्तव में कृषि की अवहेलना भारत भाग्य विधाताओं का 'मूल पाप है'[1]। कृषि की अवहेलना कृषि बेशी का अभाव है और इसका अर्थ है : उपभोक्ता उपयोग के लिए अन्न और कच्चे माल की कमी। पर्याप्त अन्न उत्पादन के अभाव के कारण हमें 1976 अन्न आयातों के लिए करोड़ों रुपए व्यय करने पड़े हैं और अन्न तथा कच्चे माल दोनों के अभाव के कारण हमारे उद्योग और कृषीतर रोजगारों का विकास नहीं हुआ है। 1951 में हमारे कामगारों का 72 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र, 10 प्रतिशत भाग उद्योग क्षेत्र में और 18 प्रतिशत भाग अर्थव्यवस्था के शेष क्षेत्र में लगा हुआ था, आज भी लगभग यही अनुपात वस्तुत: हमें प्राप्त है। जहां तक प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय का संबंध है, हमारे देश ने लगभग सबसे निचला स्थान प्राप्त किया हुआ है। इससे भी अधिक भयावह स्थिति यह है कि हमारी आर्थिक समृद्धि की दर लगभग सबसे नीची है। अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में हमें भिखारी का दर्जा मिला है।

इसलिए इस वर्तमान स्थिति का निदान किया जा सकता है जब हम उच्च-मध्य वर्ग के लोगों की क्रय शक्ति पर आधारित शहरों के औद्योगीकृत पूंजी प्रधान और केन्द्रीय उत्पादन के संसाधनों को कृषि रोजगार सुलभ विकेन्द्रित उत्पादन में और बदल दें, जैसा कि गांधीजी के शब्दों में यह स्थिति "केवल आम जनता के लिए ही न हो बल्कि आम शासन द्वारा भी अपनाई जाय।"

अन्य अधिकांश देशों में कृषि और श्रम प्रधान उद्योग दोनों के ही विकास को सर्वप्रथम स्थान दिया गया जिसका महात्मा गांधी नें समर्थन किया था और इस नीति के अपनाने से उन्हें काफी लाभ हुए हैं। जापान का उदाहरण सबसे अधिक उल्लेखनीय है : यहां तक कि चीन के मुख्य भूभाग ने भी इसका अनुसरण किया है। (केवल महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि चीन में कृषि कार्य को सामूहिक रूप से सम्पन्न किया जाता है)। केवल यही एक ऐसा मार्ग है कि बड़े और श्रम बेशी देश, विशेषकर भारत, अपनी जनता की रोजगार की दीनता की समस्या का हल कर सकते हैं और साथ ही साथ भारी उद्योगों का निर्माण भी कर सकते हैं, जैसा कि होना भी चाहिए था। इस संबंध में डब्ल्यू० वॉयटिन्स्की ने कहा है :

> "भारी उद्योग और विशेषत: भारी मशीन निर्माण के उद्योग कभी भी संवृद्धि के लिए 'नींव' तथा आधार नहीं बन पाए हैं। औद्योगिकीकरण को प्रारम्भिक अवस्था में आर्थिक संवृद्धि का 'आधार' कृषि, व्यापार और हस्त-कला था। रूस और जापान को छोड़कर सभी बड़े-बड़े देशों में भारी उद्योग उपभोक्ता वस्तुओं के आधार पर बढ़ा है जो उनकी मांगों के अनुकूल था और उनकी आवश्यकताओं के अनुसार बनता गया। यह बात न केवल अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी के लिए कही जा सकती है बल्कि इसका उल्लेख फ्रांस,

1. ये शब्द नेहरू ने देश की आर्थिक प्रगति में भारी उद्योग की भूमिका बताने के लिए प्रयोग किए हैं।

इटली, कनाडा और इसी प्रकार के अन्य देशों के लिए किया जा सकता है। रूस और जापान में विकास का विपरीत मार्ग अपनी जैसी ऐतीहासिक परिस्थितियों के कारण हुआ। रूस में पीटर महान के बाद और जापान में मीजी पुनरुद्धार के बाद औद्योगिकीकरण को प्रोत्साहित किया गया और इस प्रकार उद्योगों पर सरकार का ही नियंत्रण था तथा यह स्थिति इन राज्यों के राजनीतिक लक्ष्यों के अधीन थी। इन दोनों देशों में अधिक औद्योगिकीकरण के आधार की अपेक्षा सैन्य शक्ति के आधार पर भारी उद्योगों को आगे बढ़ाया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय रूस में सोवियत लोग और जापान में सैन्य दल ने अधिक आततायी ढंग से इस नीति पर आधिपत्य कर लिया और इसको आगे बढ़ाया।"[2]

यदि अधिक समीक्षात्मक रूप से देखा जाय तो कृषि--केवल कृषि ही, आर्थिक प्रगति की नींव और आधार है। एक देश का उसी सीमा तक विकास हो सकता है जब तक कि उसकी भूमि से अन्न और कच्चे माल की सप्लाई होती रहे। जब तक किसान अपनी आवश्यकताओं से अधिक उत्पन्न नहीं करते तब तक उनके पास बेचने के लिए कुछ भी नहीं होगा और तब तक वे कोई सम्पत्ति नहीं खरीद सकेंगे। इसका अर्थ यह है कि बढ़ते हुए कृषि उत्पादन के अनाज में न तो कोई व्यापार होगा और न दस्तकारियां विकसित होंगी।

जहां तक औद्योगिकीकरण में मानवीय श्रम के स्थान पर मशीन का स्थानापन्न निहित है और ऐसे कच्चे माल की आवश्यकता है, जिसे इन मशीनों द्वारा मनुष्य के उपयोग अथवा उपभोग के लिए, वस्तुएं बनाने के लिए प्रौसेस किया जाए या बदला जाए तो देश में औद्योगिकीकरण का नमूना अथवा उसकी कार्य-सीमा इन दो बातों पर निर्भर करती है—पहली, कच्चे माल की मांग और दर अथवा फार्म बेशी जो देश वसूल कर सकता है और दूसरी, वह अनुपात जो श्रम की तुलना में बेशी या पूंजी का होता है। हमारे देश में उद्योग के उत्पादन के दो कारकों में से पदार्थ या पूंजी ऐसे हैं जो सीमित कारक है जबकि श्रम लगभग असीमित है। मजदूरी की दर पूंजी पर ब्याज की दर से अपेक्षाकृत कम है अर्थात् आदमी मशीनों की तुलना में सस्ता है, इसलिए हमारी अर्थव्यवस्था आवश्यकतानुसार ऐसी होनी चाहिए जो अपने पूंजी संसाधनों के उपयोग में किफायती हो अथवा (जो एक जैसी ही बात है) उससे निवेशित पूंजी की प्रति यूनिट पर अधिकतम उपज मिले, यद्यपि इसमें श्रम संसाधनों की बर्बादी हो सकती है—यह एक ऐसी अर्थव्यवस्था होगी जिसमें श्रम की तुलना में उत्पादन का अनुपात कम होगा और पूंजी की तुलना में उत्पादन अधिक होगा। यह एक ऐसी अर्थव्यवस्था होगी जहां श्रम प्रधान, पूंजी बचत करने वाली तकनीकों का उपयोग करते हुए कुटीर और छोटे पैमाने के उद्यम देहातों में फैल जाएंगे और इस प्रकार मुख्य पैटर्न बना लेंगे या बनाने चाहिए तथा यह बड़े पैमाने पर ऐसे उद्योग नहीं होंगे जो अधिक स्वचालित

2. 'इण्डिया द अवेकनिंग जाइंट,' हारपर एण्ड ब्रादर्स, न्यूयार्क, 1957, पृष्ठ 175.

और महंगी मशीनों का उपयोग करते हैं तथा श्रम की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक पूंजी चाहते हैं और प्रायः तथा आवश्यकता के अनुसार शहरी केन्द्रों में लगाए जाते हैं।

जब कृषि उत्पादकता बढ़ती है तो फार्म की आय बढ़ती जाती है और इसके फलस्वरूप निर्मित वस्तुओं की अपेक्षाकृत अधिक मांग हो जाती है और इस प्रकार कुल मिलाकर एक प्रक्रिया गतिशील हो पाती है अर्थात् अधिकाधिक उद्योग स्थापित किए जाते हैं और औद्योगिकीकरण जो पहले ही प्रभावित हो चुका है, वह आय की वृद्धि का केवल परिणाम ही नहीं रहता, बल्कि स्वयं एक कारण बन जाता है।

मानवीय मांगों की बहुत अधिक विविधता है तथा विभिन्न प्रकार के उद्योग हैं और विशेषकर ऐसे उद्योग हैं जो परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं अर्थात् जो बाजार उपलब्ध कराते हैं और इस प्रकार एक दूसरे का समर्थन करते हैं—और इस प्रकार अधिकांश उद्योग इसी परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं—और इस प्रकार एक के बाद दूसरे उद्योग उभरने लगते हैं तथा प्रति व्यक्ति आय अधिकाधिक बढ़ती जाती है।

धीरे-धीरे एक ऐसी स्थिति आ जाती है जहां (विभिन्न प्रकार के उद्योगों और सेवाओं की संवृद्धि के कारण) श्रम अपेक्षाकृत कम हो जाता है और पूंजी प्रचुर हो जाती है अर्थात् जब आदमी सस्ता नहीं होता और वह मशीनों की अपेक्षा अधिक महंगा हो जाता है। यह एक ऐसी अवस्था है जिसे भारत में आने में बहुत लंबे समय की आवश्यकता है। यह अर्थव्यवस्था अपने ही प्रकार की है अथवा एक ऐसे रूप में विकसित होती है जिसमें मशीन द्वारा चालित अथवा यंत्रीकृत उद्योग का आधिपत्य होगा। दस्तकारियों से यंत्रीकृत उद्योग, श्रम प्रधान प्रौद्योगिकी से पूंजी प्रधान तकनीकी की ओर प्रगति एक ऐसी गति द्वारा शासित होती है फार्म की बेशियां उपलब्ध हैं अथवा उस श्रम की तुलना में पूंजी उपलब्ध कराई जाती है जिसे कृषि से छुटकारा दिया जाता है अथवा जिसकी कृषि में भावी समय के लिए आवश्यकता नहीं होती। चूंकि कुटीर और छोटे पैमाने के उद्योग ऐसी कृषि बेशियों के आधार पर ही बढ़ते हैं, जो मुख्य रूप से अन्न और कच्चे माल हैं। इसी प्रकार पंजीकृत उद्योग उन कुटीर और छोटे पैमाने के उद्योगों के आधार पर बढ़ते हैं जो उनकी मांगों को पूरा करते हैं और उनकी आवश्यकताओं के अनुसार अपने को समायोजित करते हैं। यह सिलसिला अधिक वांछनीय है क्योंकि एक अवस्था दूसरी अवस्था के लिए बाजार उपलब्ध कराने में सहायता देती है।

इसलिए कतिपय अपवादों को छोड़कर उन्हें देश को लंबी अवधि के हित में बनाना चाहिए। अन्य शब्दों में यह कह सकते हैं कि न्यूनतम परियोजनाओं या उद्योगों को छोड़कर आवश्यक परियोजनाएं या उद्योग हाथ में लेने चाहिए, जो अर्थव्यवस्था और राष्ट्रीय सुरक्षा की अन्तर-संरचना अथवा नींव का निर्माण करते हैं और इस प्रकार की परियोजनाओं या उद्योगों को आज ही स्थापित किया जाना चाहिए तभी बड़े पैमाने के उद्योग आएंगे अथवा आने चाहिए। इसमें समय लगेगा और यह कुटीर अथवा छोटे पैमाने के उद्योगों को आधार बनाकर औद्योगिक संरचना का शीर्ष स्थान ग्रहण कर लेंगे।

फिर भी 1947 से हमारे देश के कांग्रेस-नेतृत्व में भारी या बड़े पैमाने के उद्योगों को आधार माना है तथा दस्तकारियों और छोटे या उपभोक्ता वस्तुओं को एक अनिष्ट के रूप में सहन किया है अथवा उन्हें आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया में चरम बिन्दु माना है। यह नीति बलपूर्वक उन प्रवृत्तियों को बदलने वाली रही जो हमारी ऐसी पिछड़ी अर्थव्यवस्था को स्वतः विकसित करनी चाहिए और जिसकी प्रगति करने की वांछनीयता है अथवा जिसने प्रगति करना प्रारंभ किया है। इसके फलस्वरूप हमारे देश को आज बेरोजगारी की अधिकाधिक वृद्धि का सामना करना पड़ा है। हमारे देश को इस बात का भी सामना करना पड़ा है कि आय की असमानताएं बढ़ गई हैं और संसार में सबसे कम आर्थिक वृद्धि की दर हमारे देश में रह गई है।

नेहरू ने भारी उद्योग के कार्यक्रम में अपना दिल और दिमाग लगा दिया लेकिन भारी उद्योग कार्यक्रम आर्थिक रूप से बेकार ही थे। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के कॉमनवेल्थ स्टडीज विभाग के रीडर पी०टी० बौयेर इस्मट्स ने कहा, "उदाहरण के लिए यह अधिक खर्चीली क्षमता के उत्पादों के लिए वास्तविक या भावी मांग के उच्च संगत विचार की अवहेलना करती है। कृषि क्षेत्रक और उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योग ही ऐसे हैं जो अन्ततोगत्वा भारी उद्योग के उत्पाद के लिए घरेलू बाजार उपलब्ध कराते हैं। भारत में उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों की बड़ी-बड़ी शाखाएं वर्षों से अपनी क्षमता से कहीं कम काम कर रही हैं जिसका मुख्य कारण यह है कि कृषि उत्पादकता में असफलता हुई है और इसमें उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हो सकी है तथा परिणामस्वरूप उद्योग के लिए विकसित बाजार उपलब्ध नहीं हो सका है, निर्यात अन्ततोगत्वा पैदावार के एक भाग के लिए ही बाजार बना पाते हैं लेकिन यह एक बहुत बड़ा कारक है कि अधिकांश क्षमता पूंजी प्रधान होती है और ऐसे कार्यकलापों में अधिकांश क्षमता की आवश्यकता होती है जिनमें उन्नत प्रौद्योगिकी और कार्य-कुशलता की आवश्यकता होती है। इसलिए इस बात की संभावना नहीं है कि भारत इन कार्यों में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता से लाभ उठा सकेगा। इसके अतिरिक्त अन्य देशों में अन्य सम्भव बाजार वैसे ही आत्मनिर्भर होंगे जैसे कि भारतीय बाजार आत्मनिर्भर होते हैं।"[3]

हमारी महत्वाकांक्षा है कि हम शीघ्र ही पश्चिमी देशों की प्रगति को प्राप्त कर लें, लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि भारत की अर्थव्यवस्था का विकास अथवा करोड़ों लोगों के रहन-सहन के स्तर की उन्नति हमें अपने ही कारक न्यास की अन्तर-संरचना में करनी होगी। अन्य शब्दों में यह कह सकते हैं कि हमें उन सीमाओं में प्रगति करनी होगी जो मानव के अनुपात में उसकी कम भूमि या प्राकृतिक संसाधनों की हैं।

भारत में प्रगति उस इस्पात की मात्रा अथवा मोटर गाड़ियों या टेलीविज़न

3. "प्रॉबलम्स, पैराडॉक्सेस, प्रौस्पैक्ट्स आफ़ इंडियन प्लैनिंग," 'कैपीटल,' कलकत्ता, 17 दिसंबर, 1959 के पूरक अंक में प्रकाशित।

सैंटों की संख्या से नहीं मापी जा सकती जिनका निर्माण करने में हम सक्षम हैं अपितु इस प्रगति का आकलन तभी हो सकता है जब हम अन्न, कपड़े, आवास, स्वास्थ्य आदि जैसी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की मात्रा और गुणवत्ता प्राप्त कर सकें और इन वस्तुओं की उपलब्धता (अंतिम व्यक्ति) तक को हो, जैसा कि गांधी जी कहा करते थे। भारत और इसी प्रकार के अन्य देशों में भारी उद्योग को प्राथमिकता दिए जाने का अर्थ यह है कि कृषि-विकास में गतिरोध, अन्न का अभाव और अन्न तथा औद्योगिक कच्चे माल के आयात पर निर्भरता पैदा करना है।

विकासशील विश्व में ऐसे कई देश हैं जहां भारत की अपेक्षा अधिक अच्छे प्राकृतिक साधन नहीं हैं फिर भी वहां अधिक कार्य हैं और गरीब लोग भी सम्पत्ति पैदा कर रहे हैं, अपेक्षाकृत कम बच्चे मर रहे हैं और प्रत्येक व्यक्ति साक्षर हो रहा है। इन्हीं देशों में राजनीति की लोकतांत्रिक पद्धति विद्यमान है और इन देशों में से प्रमुख देश ताइवान, इज़राइल, पोर्टोरीको और मिस्र हैं। प्रश्न यह उठता है कि भारत अभी तक गरीबी और विपत्ति से क्यों आक्रांत है और अब तक आगे क्यों नहीं बढ़ सका है? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि हमारी नीतियां दोषपूर्ण हैं और इनमें संशोधन करने की आवश्यकता है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए कतिपय भूलों को दूर करना होगा जो बहुत समय से हमारे देश में पनप रही हैं।

इन भूलों में से एक या दो का उल्लेख किया जा सकता है, अधिकांश लोगों का यह विश्वास है कि एकड़, प्रति-एकड़ बड़े-बड़े फार्म छोटे फार्मों की अपेक्षा अधिक उपज देते हैं और अधिक रोजगार देते हैं। वास्तव में बड़े-बड़े यंत्रीकृत फार्मों की तुलना में छोटे-छोटे फार्मों में प्रति एकड़ अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन होता है और अपेक्षाकृत अधिक रोजगार उपलब्ध होता है। इसी प्रकार छोटे और कुटीर उद्योग अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन करते हैं और पूंजी निवेश की प्रति यूनिट के हिसाब से अधिक लोगों को रोजगार में लगाते हैं जबकि इसकी तुलना में नवीनतम मशीनों से सुसज्जित शहरी कारखानों में ऐसा नहीं हो पाता। कृषि के क्षेत्र में भूमि का महत्व है और उद्योग के क्षेत्र में पूंजी का महत्व है और ये दोनों कारक ही भारत में सीमित कारक हैं और अर्थशास्त्र का कोई नौसिखिया भी यह जानता है कि इनका अधिकतम उपयोग करना चाहिए। इसके अलावा और अधिक क्या है, कोई भी अन्य लोकतांत्रिक तरीका नहीं है, जिससे सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक संवृद्धि सुनिश्चित की जा सके।

19

भारत की कृषि-संभाव्यता

अन्य देशों के आर्थिक विकास के इतिहास से यह विदित होता है कि इस निष्पादन की दो पूर्व शर्तें हैं : पहली, जिसका विवेचन पिछले अध्याय में किया गया है। देश का कृषि उत्पादन इतना अधिक है कि उत्पादकों की आवश्यकता से अधिक बेशी है और यह उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। दूसरी, लोग उपयुक्त मानसिक प्रवृत्तियां रखते हैं अर्थात् भौतिक संवृद्धि की लालसा से प्रेरित रहते हैं और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कठोर परिश्रम करने लिए तैयार रहते हैं और यदि आवश्यकता हुई तो वे अपने रहन-सहन और काम करने के तरीकों और उपायों को भी बदल देते हैं। ये दोनों शर्तें एक साथ ही रहनी चाहिए या घटित होनी चाहिए। यह प्रस्ताव है कि इनमें से पहली शर्त का ही यहां विवेचन किया जाए।

भारत में जनसंख्या की तुलना में खेती-योग्य भूमि का अनुपात अन्य कई देशों, यथा—अमरीका, नीदरलैंड, बेल्जियम, पश्चिमी जर्मनी, मिस्र, ताइवान और दक्षिणी कोरिया की अपेक्षा अधिक है फिर भी वे देश अपने ही उत्पादन से अपने निवासियों का भरण-पोषण करने के लिए समर्थ हैं। विश्व में जापान में शायद सबसे छोटी पारिवारिक जोत है लेकिन जापान अभी हाल ही तक अन्न की कुल आवश्यकता के बराबर अन्न उपजाने में समर्थ था।

डेविड सैलबोर्न ने लिखा है, "भारत एक धनी देश है, जो अब गरीब है। भारत खनिज-पदार्थों, बिजली, कोयला, तेल-संसाधनों और नदियों में धनी है। भारत में विश्व का सबसे विस्तृत उपजाऊ मैदान है और इस देश का दक्षिण का पठार उच्च उत्पादक ज्वालामुखी की मिट्टी से भरपूर है और भारत में 'विशाल भूमिगत जल संसाधनों, का भंडार है। अमरीकी समुद्र पार विकास परिषद के अनुसार भारत भी अमरीका के बहुत निकट अन्न-उत्पादन का प्राकृतिक न्यास है। भारत में फ्रांस, न्यूजीलेंड और यूगोस्लाविया के समान ही प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि उपलब्ध है और इस

देश की जनसंख्या भी जर्मनी, हालैंड, जापान, ग्रेट ब्रिटेन, बंगला देश व श्रीलंका से कम नहीं है। यह कहा जाता है कि 'भारत अपने अन्न-उत्पादन को दुगुना या तिगुना कर सकता है।' भारत में कृषि योग्य भूमि की इतनी अधिक क्षमता है कि इसकी चीन से तुलना की जा सकती है और शायद चीन की अपेक्षा भारत में कृषि योग्य भूमि अधिक है जबकि 10 करोड़ एकड़ भूमि खेती योग्य नहीं है। यह पड़ती भूमि है अथवा, 'खेती के लिए उपलब्ध नहीं' है लेकिन भारत की जनसंख्या चीन की जनसंख्या का तीन चौथाई भाग है।"[1]

कुल क्षेत्र की दृष्टि से चीन, रूस और कनाडा के आकार के बाद ही अपना स्थान रखता है। चीन की कृषि योग्य भूमि भारत की कृषि योग्य भूमि की तुलना में बहुत कम है अर्थात् चीन में 10.7 करोड़ हेक्टेयर भूमि में खेती की जाती है जबकि भारत में 14 करोड़ हेक्टेयर भूमि में खेती की जाती है। फिर भी चीन में भारत की तुलना में दुगुना अनाज पैदा होता है (1974 में भारत के 10.4 करोड़ टन की तुलना में चीन में 20.7 करोड़ टन अन्न पैदा हुआ था)। इसका एक कारण यह है कि चीन अपनी कृषि योग्य भूमि को अधिक सघन तरीके से उपयोग करता है। कुल खेती योग्य क्षेत्र (दोहरी फसल के क्षेत्र को सम्मिलित करते हुए) 15.5 करोड़ हेक्टेयर (10.7 करोड़ हेक्टेयर के निवल क्षेत्र के सहित) है जबकि भारत का कृषि योग्य क्षेत्र 16.9 करोड़ हेक्टेयर (10.4 करोड़ हेक्टेयर निवल क्षेत्र के सहित) है। यह साम्यवादियों की उपलब्धि नहीं है। चीन की पैदावार पारंपरिक रूप से विश्व में सबसे अधिक रही है। उदाहरणार्थ, भारतीय कृषि उत्पादन 20वीं शताब्दी के 7वें दशक में लगभग उसी स्तर का था जितना कि चीन का उत्पादन 15वीं शताब्दी में रहा।

भारत में औसत रूप से प्रति एकड़ अथवा हेक्टेयर अनाज का उत्पादन कृषि की दृष्टि से उन्नत देशों की तुलता में बहुत ही कम है। आगे की तालिका से यह विदित होगा कि 17 देशों में से हमारे देश में प्रति एकड़ उत्पादन प्रारंभिक अवधि (1948-1950) और अंतिम अवधि (1968-70) में सबसे कम था। इसके साथ ही साथ यह भी विदित होगा कि इसका प्रारंभ सबसे निचले आधार से हुआ। भारत की वास्तविक वृद्धि और प्रतिशत वृद्धि सबसे अधिक होनी चाहिए थी लेकिन वास्तविक वृद्धि को देखते हुए हमारा स्थान 13वां है और प्रतिशत वृद्धि को देखते हुए हमारा स्थान 9वां है। यद्यपि ताइवान, अमरीका, यूगोस्लाविया, मैक्सिको, कोरिया, कोलंबिया, मिस्र और जापान जैसे देश प्रारंभ से ही बहुत उच्च स्तरों पर उत्पादन शुरू करने के लाभ से वंचित हुए फिर भी इन देशों ने हमारे देश की तुलना में अधिक दर के हिसाब से अन्न-उत्पादन में वृद्धि करने की समर्थता प्राप्त की है।

1. 'एन आइ टु इंडिया—द अनमास्किंग ऑफ़ ए टायरैनी', डेविड सैलबोर्न, अध्याय 1.

तालिका 129
अनाज के लिए प्रति एकड़ पैदावार

(प्रति एकड़ भूमि विकास)

क्रम संख्या	देश	1948-50 में घटते हुए अनुपात में पैदावार	1968-70 में पैदावार		1948-70 के दौरान वृद्धि	
			वास्तविक आंकड़े	श्रेणी करण	वास्तविक	वृद्धि की प्रतिशतता
1.	जापान	2920	4585	1	1665	57.00
2.	डेनमार्क	2670	3860	2	1190	44.60
3.	ब्रिटेन	2155	3170	5	1015	46.9
4.	मिस्र	2120	3370	4	1250	58.9
5.	ताइवान	1800	3510	3	1710	95.00
6.	कोरिया	1640	2850	7	1210	74 45
7.	अमरीका	1495	2895	6	1400	93.6
8.	इंडोनेशिया	1240	1530	11	290	23.4
9.	थाइलैंड	1190	1670	9	480	40.4
10.	ब्राजील	1170	1225	14	55	4.7
11.	यूगोस्लाविया	1145	2185	8	1040	90.8
12.	चीली	11 5	1630	10	505	44.4
13.	फिलीपीन्स	930	1145	15	215	23.1
14.	कोलंबिया	915	1480	12	565	61.7
15.	टर्की	835	1105	16	270	32.3
16.	मैक्सिको	700	1265	13	565	80.7
17.	भारत	640	945	18	305	47.7

स्रोत : खाद्यान्न कृषि संगठन, 'प्रोडक्शन इयर बुक', 1970 और 'वर्ल्ड क्रौप्स स्टैटिस्टिक्स' 1966.

आगामी तालिका में यह दिखाया गया है कि विश्व में 55 देशों की कुल संख्या में से, जिनमें से प्रत्येक देश में एक करोड़ से अधिक जनसंख्या है, अनाज और दालों दोनों में ही प्रति हेक्टेयर उत्पादन की दृष्टि से भारत का 43वां स्थान है।

2. भारत दाल-उत्पादन में 43वें स्थान पर है लेकिन वेनेज्यूला और बर्मा दोनों ही देशों का उत्पादन समान है इसलिए उनका स्थान 42वां दिखाया गया है।

तालिका 130

संसार के विभिन्न देशों में प्रति हेक्टेयर अनाज और दालों की पैदावार

क्रम संख्या	देश	जनसंख्या (दस लाख में)	अनाज की पैदावार (किलोग्राम/हेक्टेयर)	दालों की पैदावार (किलोग्राम/हेक्टेयर) कोष्ठकों में श्रेणीकरण क्रम से
1	2	3	4	5
1.	जापान	115.87	5880	1599 (12)
2.	कोरिया गणराज्य	37.31	5460	867 (25)
3.	नीदरलैंड	14.03	5415	3286 (2)
4.	बेल्जियम (लक्स)	10.21	4826	3414 (1)
5.	ब्रिटेन	56.07	4471	2595 (4)
6.	फ्रांस	53.56	4450	2230 (5)
7.	अमरीका	220.28	4402	1630 (11)
8.	जर्मनी जनवादी गणराज्य	61.20	4357	2866 (3)
9.	हंगरी	10.71	4138	1091 (19)
10.	मिस्र	40.92	3976	2051 (6)
11.	कोरिया (डी० पी० आर०)	17.48	3843	856 (26)
12.	यूगोस्लाविया	22.10	3588	1212 (15)
13.	चेकोस्लोवाकिया	15.25	3524	1851 (7)
14.	जर्मनी (डी० पी० आर०)	16.74	3517	1656 (10)
15.	इटली	56.88	3502	1372 (13)
16.	रोमानिया	22.06	3024	125 (52)
17.	मलेशिया	13.29	2854	—
18.	इंडोनेशिया	148.47	2581	501 (44)
19.	ईरान	36.93	2581	1031 (21)
20.	कोलंबिया	26.25	2510	583 (39)
21.	अर्जेन्टीना	26.72	2276	1107 (18)
22.	पोलैंड	35.22	2203	1196 (16)
23.	चिली	10.91	2191	904 (23)
24.	चीन	945.01	2137	1028 (22)
25.	कनाडा	23.69	2062	1791 (8)
26.	वेनेज्यूला	14.43	2024	575 (40)
27.	स्पेन	36.35	1929	751 (29)
28.	बंगला देश	86.06	1924	697 (32)
29.	श्रीलंका	14.60	1924	693 (33)
30.	थाइलैंड	46.34	1920	681 (35)

(क्रमशः)

1	2	3	4	5
31.	बर्मा	34.43	1899	575 (40)
32.	मैक्सिको	67.67	1886	729 (30)
33.	तुर्की	44.24	1881	1145 (17)
34.	पेरू	17.29	1851	806 (27)
35.	विएतनाम	51.08	1810	498 (45)
36.	नेपाल	13.93	1749	429 (49)
37.	पाकिस्तान	79.83	1552	441 (48)
38.	फिलीपीन्स	49.49	1520	874 (24)
39.	आस्ट्रेलिया	14.32	1436	679 (36)
40.	रूस	263.50	1418	1352 (14)
41.	ब्राजील	122.87	1303	514 (43)
42.	दक्षिणी अफ्रीका	28.48	1298	719 (31)
43.	भारत	678.25	1282	524 (42)
44.	केनिया	15.78	1225	422 (50)
45.	अफगानिस्तान	21.45	1119	1657 (9)
46.	इराक	12.64	981	805 (28)
47.	युगांडा	12.79	932	480 (46)
48.	मोरक्को	19.64	922	688 (34)
49.	घाना	11.31	850	104 (53)
50.	तंजानिया	17.38	750	445 (47)
51.	नाइजीरिया	74.60	711	214 (51)
52.	जैरे	27.51	659	611 (38)
53.	अल्जीरिया	17.95	649	621 (37)
54.	सूडान	17.86	631	1076 (20)
55.	मोजांबीक	10.19	610	542 (41)

स्रोत : 'खाद्यान्न कृषि संगठन, प्रोडक्शन इयर बुक', 1979, खंड 33, तालिका 3, 9 और 22, स्तंभ 3, 4, 5 में क्रमानुसार।

टिप्पणी : ताइवान की जनसंख्या एक करोड़ होने पर भी उसे तालिका में सम्मिलित नहीं किया गया है क्योंकि इसके उत्पादन के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

चावल के संबंध में क्षेत्रफल, उत्पादन और प्रति हेक्टेयर उत्पादन के विवरण आगामी तालिका में दिए गए हैं जो विश्व के संदर्भ में देश की स्थिति की संक्षिप्त रूप हैं।

तालिका 131

1978 में (चावल भूसी सहित) क्षेत्रफल, उत्पादन और प्रति हेक्टेयर पैदावार

देश	क्षेत्रफल ('000 हेक्टेयर)	जनसंख्या ('000 हेक्टेयर)	पैदावार (प्रति हेक्टेयर/किलोग्राम)
चीन	37290	131775	3534
जापान	2560	16000	6250
कोरिया गणराज्य	1230	8050	6551
भारत	40000	79010	1975
विश्व का जोड़	145130	376448	2594

ऊपर की तालिका से यह विदित होगा कि भारत में चावल की खेतीका क्षेत्रफल कुल मिलाकर विश्व के 14.5 करोड़ हेक्टेयर में से 4 करोड़ हेक्टेयर है। चावल की खेती के अन्तर्गत क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व में भारत का प्रथम स्थान है और 27.5 प्रतिशत क्षेत्रफल भारत का है फिर भी इस देश में पैदावार कम होती है—औसत रूप से विश्व की पैदावार की अपेक्षा 25 प्रतिशत कम । गेहूं, मक्की और कपास की फसलों के संबंध में क्षेत्रफल और उत्पादन की स्थिति लगभग एक सी है।

विधानचन्द्र कृषि विश्वविद्यालय के 9 मार्च, 1976 को हरिन घाटला (पश्चिम बंगाल) में प्रथम दीक्षांत समारोह को संबोधित करते हुए भारतीय कृषि शोध संस्थान के महानिदेशक डॉ० एम० एस० स्वामीनाथन ने श्रोताओं को बताया कि भारत विश्व में सबसे क्रांतिकारी कृषि पद्धतियों में से एक पद्धति का निर्माण कर सकता है। "ऊर्जा पुनर्चक्र नियमों पर आधारित कृषि इन नियमों को अपनाने वाले किसी भी राष्ट्र के लिए सबसे सशक्त परिसम्पत्ति हो सकती है।…" डॉ०स्वामीनाथन ने अपने भाषण में यह भी कहा कि, "इस समय पैट्रो-डालरस का नाम है लेकिन यह सम्पत्ति न दोहराए जाने वाले स्रोतों के शोषण पर आधारित है। यह कृषि संपत्ति के विपरीत है । कृषि सम्पत्ति दोहराए जाने वाला संसाधन है और इसकी शक्ति सूर्य की ताप ऊर्जा से मिला करती है।"

भारत में भूमि और जलवायु की परिस्थितियां कृषि-उत्पादन के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हैं। भारत में यूरोप और उत्तरी अमरीका के गैर-उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों की तुलना में प्रकाश और धूप अधिक समय तक मिला करती है। इससे उत्पादन के अवसरों का लाभ उठाने में भारी प्रभाव पड़ता है। भारतीय किसान के लिए यह संभव है जबकि यूरोपीय किसान के लिए यह सम्भव नहीं है कि वर्ष भर फसलें उगाता रहे और अभी हाल ही में कई प्रकार की अल्प अवधि की फसलों ने इस सैद्धांतिक संभावना को व्यावहारिक सत्य के रूप में बदल दिया है। हम कृषि क्षेत्र में

प्रौद्योगिकी का अभाव नहीं रखते और हमारी स्थिति उद्योग-क्षेत्र में भी इसी प्रकार की है। हम उद्योग से कृषि-संवृद्धि की सहायता कर सकते हैं।

भारत में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के बजाय आवश्यकता से अधिक अन्न उपजाना कोई बड़ी बात नहीं है और यह तथ्य सिद्ध किया जा सकत है जैसा कि वर्ष 1967, 1968, 1970 और 1971 में राष्ट्रीय औसत उत्पादन क्रमशः 8.9, 11.0, 12.1 और 13.1 क्विटल प्रति हेक्टेयर की तुलना में 92.0, 103.4, 123.9 और 161.2 क्विटल प्रति हेक्टेयर रहा जब कि अखिल भारतीय फसल प्रतियोगिताओं में गेहूं का उत्पादन सबसे अधिक था।

अखिल भारतीय कृषि-शोध-संधान में बहु और नई फसलों के प्रयोगों ने यह दिखाया है कि प्रति हेक्टेयर 15 टन अनाज एक ही वर्ष में पैदा किया जा सकता है। इसमें उन संक्रियाओं की सघनता की आवश्यकता है जो ऐसे 10 एकड़ या इससे कम क्षेत्रफल के छोटे-छोटे फार्मों में ही अपनाई जा सकती है जैसाकि भारत की स्थिति है।

'नेशनल हेरल्ड', लखनऊ ने 15 जनवरी, 1975 के अंक में तिनाली से प्राप्त रिपोर्ट के आधार पर यह कहा है :

> "यहां से लगभग 9 किलोमीटर दूर जानपानी गांव के एक छोटे किसान ने अपने पौने तीन ($2\frac{3}{4}$) एकड़ फार्म में 4 फसलों अर्थात् तीन धान और एक दाल की फसल से एक वर्ष में 94 बोरियां (10 किलोग्राम प्रति बोरी) धान और 4 बोरी काला चना उगाया है।"

उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में एक ओर और पंजाब तथा हरियाणा जैसे राज्यों में दूसरी ओर पैदावार में बहुत बड़ा अन्तर है। इन राज्यों में खेती किए गए सिंचित क्षेत्रों और पैदावारों के संबंध में स्थिति आगामी तालिका में दिखाई गई है :

तालिका 132

राज्य	निवल खेती किया गया क्षेत्रफल (1976-77)	निवल सिंचित क्षेत्रफल (1976-77)	निवल सिंचित की तुलना में निवल खेती किए गए क्षेत्रफल की प्रतिशतता	निवल सिंचित क्षेत्रफल जैसाकि अखिल भारतीय प्रतिशतता के आधार पर है	औसत पैदावार (1977-78) किलोग्राम/हेक्टेयर चावल	गेहूं
	(दस लाख हेक्टेयर में)					
बिहार	8.35	2.88	48.2	8.3	987	1261
उत्तर प्रदेश	17.33	8.26	47.7	23.9	1065	1429
हरियाणा	3.65	1.80	49.3	5.2	2605	2099
पंजाब	4.17	3.19	76.5	9.2	3362	2537
अखिल भारत	140.88	34.61	24.6	100.0	1317	1477

इन सभी राज्यों में हिमालय से निकलने वाली नदियों द्वारा सिंचाई की जाती है और इनमें गंगा की तलहटी की उपजाऊ भूमि है। पंजाब और हरियाणा की तुलना में बिहार और उत्तर प्रदेश में कहीं अधिक वर्षा होती है और इससे इन राज्यों में कहीं अधिक लाभ होता है। अकेले उत्तर प्रदेश में ही इस देश का निवल सिंचित क्षेत्रफल लगभग 24 प्रतिशत है। यदि पंजाब और हरियाणा राज्यों में होने वाली पैदावार से वास्तविक पैदावार की तुलना की जाए जबकि इन दोनों राज्यों में पंजाब की अपेक्षा छः गुना खेती योग्य क्षेत्रफल है, तो इन राज्यों की पैदावार से न केवल राष्ट्र को ही अन्न मिला है बल्कि निर्यात के लिए भी देशी अन्न प्राप्त हुआ है।

एक प्रेस रिपोर्ट के अनुसार भारत में भूतपूर्व अमरीकी राजदूत श्री डेनियल मौयनिहन ने 4 जनवरी, 1975 को हांगकांग में संवाददाताओं के क्लब में दोपहर के भोजन के अवसर पर आयोजित बैठक में बताया कि भारत की अंतिम कृषि संभावना "ऐसी सशक्त है कि इससे लगभग समस्त विश्व को भोजन दिया जा सकता है।"

डॉ० सी० एच० शाह ने एक रोचक अध्ययन किया है। इस अध्ययन में 2000 ईसवी में फसल-उत्पादन के बारे में अनुदान करने का प्रयत्न किया गया है। डॉ० शाह ने तीन अध्ययन किए हैं। पहला अध्ययन भारतीय कृषि में देखी गई प्रवृत्तियों पर आधारित है। दूसरे अध्ययन में सिंचाई के बारे में यह अनुमान लगाया गया है कि अधिकाधिक संभावनाओं की पूर्ति के लिए सिंचाई का किनना प्रसार किया जा सकता है। तीसरे अध्ययन में दूसरे अध्ययन के आगे प्रौद्योगिक सुधारों पर विचार किया गया है।[1]

अनुमानित उत्पादन का सारांश इस प्रकार है :

तालिका 133

(दस लाख टन)

फसल वर्ग	अध्ययन I	अध्ययन II	अध्ययन III
अनाज	175.4	223.0	349.2
दालें	12.1	10.2	20.2
खाद्यान्न	187.5	233.2	369.4
तिलहन	8.6	10.3	13.6
गन्ना (गुड़)	36.6	57.7	57.7
कपास	780.1	9150.0	29000.0
जूट*	4266.0	3833.0	3833.0
तंबाकू	0.64	0.39	39.0

*180 किलोग्राम प्रति गांठ के हिसाब से हजार गांठें।

1. विवरणों के लिए देखिए—सी० एच० शाह लिखित पुस्तक 'ए लौंग रेंज पर्सपेक्टिव फॉर इंडियाज एग्रीकल्चरल प्रोडक्शंस', 2000 ए० डी०, आपरेशन्स रिसर्च ग्रुप, बड़ौदा, 1975.

डॉ० एम० एस० स्वामीनाथन, सदस्य योजना आयोग ने भारतीय कृषि की संभावना पर भाषण देते हुए बंगलौर में 'भारतीय कृषि इसकी संभावना और कार्य-निष्पादन' पर आयोजित संगोष्ठी में जो लेख पढ़ा उसमें यह कहा :

> "भारत में हमारे दोनों सतह या भूमिगत जल साधनों से 11.333 करोड़ हेक्टेयर भूमि की सिंचाई हो सकती है लेकिन अभी तक 5.501 करोड़ लाख हेक्टेयर से अधिक भूमि की सिंचाई नहीं हो सकी है। इस समय कृषि की सघनता 1.2 है। यहां तक कि सिंचित भूमि में 1.25 से अधिक नहीं हो पाती जिससे सिंचित कुल उपयोग में न लाई जाने वाली भूमि और शायद सिंचाई की सम्भावना का पता चलता है। तकनीकी रूप से कम-से-कम 2.0 की सघनता प्राप्त करना कठिन नहीं है। आजकल उर्वरक उपभोग 26 किलोग्राम/हेक्टेयर है। जो जापान जैसे देशों की तुलना में बहुत कम है जहां 300 किलोग्राम/हेक्टेयर होता है। आज के स्तर के अनुसार 67 प्रतिशत क्षेत्रफल में अनाज उगाया जाता है और इसमें अभी उन्नत पैदावार की किस्मों का लाभ उठाया जाना शेष है। किसान अपने अल्प साधनों के कारण विशेषकर छोटे और सीमांत साधनों से स्वाभाविक रूप से उस वित्त को पूरा करने को कठिनाई महसूस करते हैं जिसकी आधुनिक कृषि उत्पादन के लिए आवश्यकता होती है। यही स्थिति ऐसी है कि मुख्य कारक के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय साख पैदा होती है। फिर भी यह बताना चाहिए कि अभी तक संस्थागत वित्त 140 रुपए प्रति हेक्टेयर से अधिक नहीं है और जो स्वीकार्य रूप से बहुत कम है। इस सबसे यह विदित होता है कि कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए अभी तक उपयोग में न लाई जा सकी। संभावना का उपयोग किया जाना शेष है।"

इसलिए भारत कृषि पूंजी के अभाव में क्षतिग्रस्त है। परन्तु ऐसा क्यों है ? इसका सरल उत्तर है, जैसा कि पाठक ने इस पुस्तक के प्रथम भाग में देखा है, भारत के शहरी राजनीतिक लोगों ने गांव की और कृषि की अवहेलना कर दी है और भारी औद्योगिक संयंत्रों की ओर अनावश्यक रूप से ध्यान दिया है।

20

ग्रामीण विकास के लिए निधियां

जैसा कि पाठक ने पहले ही अध्ययन किया है कि गरीबी और दारुण दुःख तथा स्वच्छता सुविधाओं और पेय-जल का लगभग अभाव, मुंह फाड़े बेरोजगार तथा अल्प रोजगार की वृद्धि और मानव को अपने ही संबंधियों द्वारा होने वाले शोषण के कारण जीवन की गुणवत्ता की कमी जैसे विशेष लक्षण हैं जो हमारे अधिकांश गांवों में विद्यमान हैं। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की गहरी जड़ें हैं और वहां अधिकांशतया गरीबी है फिर भी शहरी गरीबी अधिक स्पष्ट रूप से दिखती है: शहरों की गंदी बस्तियां और अवनति अनायास धनी नागरिकों का ध्यान आर्कषित करती हैं और इस ओर अन्य क्षेत्रों अथवा देशों से आए लोगों का भी ध्यान आर्कषित होता है। परंतु गंदी बस्तियों के अधिकांश निवासी और हमारी गलियों के भिखारी गांव छोड़कर शहरों में आ बसे हैं क्योंकि गांवों में भूमि, रोजगार की कमी है और वहां सर्वत्र निराशा ही निराशा है। जनसमुदाय की गरीबी को हटाने के लिए नगरों में सुधारात्मक स्थितियां तैयार करने और कार्य की व्यवस्था की जा रही है अतः नगरों की ओर निराशापूर्ण ग्रामीण क्षेत्रों से अधिकाधिक लोग खिचकर आ रहे हैं। विश्वव्यापी गरीबी की समस्याओं के समाधान करने के लिए तीसरे और चौथे विश्व के गरीब देशों से लोगों को विकसित अथवा औद्योगीकृत देशों में प्रवास करने की अनुमति दी जाय।

आपूर्ति और मांग का बाजार-नियम यह है कि कुछ व्यक्तियों की संपत्ति उन संसाधनों को परिवर्तित कर देती है जिनमें अन्य व्यक्तियों के श्रम शामिल हैं और जो गरीबों की वास्तविक तथा अनुगामी मांग को पूरा न करके धनी व्यक्तियों की वैभवशील इच्छाओं की पूर्ति करती हैं। भूमि और श्रम का उपयोग अन्न उपजाने के बजाय अंगूर की खेती करने में होता है; कामगारों के लिए आवास बनाने के बजाय महलों का निर्माण किया जाता है।

अब तक हमने सामान्य रूप से संसाधनों को वर्तमान पद्धति की ओर लगाकर गरीबी की समस्या के समाधान की कोशिश की है और यह आशा की है कि गरीबों

को भी इसका 'लाभ उपलब्ध' हो सकेगा। इसमें से कुछ का लाभ हुआ भी है। जब कभी कोई कारखाना स्थापित किया जाता है तो सदैव ऐसे बेरोजगार व्यक्ति को काम मिल जाता है जिसको काम की अधिक आवश्यकता होती है। जब कभी किसी किसान को अधिक उत्पादन वाले बीज मिल जाते हैं तब उसका उत्पादन बढ़ जाता है और वह भी अपने भूमिहीन पड़ोसी को अस्थायी काम दे सकता है। और इसी प्रकार बराबर क्रम बना रहता है।

लेकिन नए निवेश का अधिकांश हित-लाभ उसी जगह ज्यों का त्यों बना रहता है जहां से यह प्रारंभ हुआ था—उसी व्यक्ति के लिए जिसे पहले ही सब कुछ उपलब्ध है। गरीबों को इससे उत्पन्न स्थिति से, हित-लाभ पहुंचता है या कभी-कभी हानि होती है; अथवा उन्हें बचे-खुचे रोटी के टुकड़े ही मिल पाते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर भी नए निजी निवेश के शुद्ध परिणाम, जो गरीबी से लड़ने के लिए परिसंपत्ति माना गया है, ब्याज और लाभ के भुगतान के लिए यदा-कदा बृहद् विदेशी विनिमय वचनबद्धता है। और देशी तथा व्यापक रूप से स्थानीय उत्पादन पद्धतियों का विनाश है और उन सभी का विनाश भी है जो अभी तक बच पायी हैं। इसी प्रकार, शोषण पद्धति के परिवेश में किसी गलत व्यक्ति को उच्चतर शिक्षा देने से भी गरीब का उद्धार नहीं हो सकता और इसके विपरीत अधिक चतुर व्यक्ति उन गरीबों का अधिक शोषण कर लेते हैं।

इसके अलावा, हम सभी उन समस्याओं से अवगत हैं जो हमें प्रभावित करती हैं जबकि हम उन समस्याओं से अवगत नहीं हैं जो अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करती हैं। और 'आवश्यकता' शब्द अधिक लचीला है। जो लोग सरकारी सेवा में हैं, वे उस व्यक्ति के अधिक समीप होते हैं जिसे कार की 'आवश्यकता' है अथवा जिसे विश्वविद्यालय-शिक्षा की आवश्यकता है जबकि हम उस व्यक्ति के समीप नहीं होते जिसे अपने नंगे पांव को बचाने के लिए जूतों की 'आवश्यकता' होती है अथवा जिस व्यक्ति को पढ़ने और लिखने की योग्यता की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार चेतन अथवा अचेतन रूप से अभी तक अपनाई गई नीतियों का यह परिणाम निकला है कि सार्वजनिक क्षेत्र से पैदा की गई संपत्ति के हितलाभ गरीब आदमी की अपेक्षा धनी व्यक्ति को अधिक होते हैं। यह संपत्ति ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगर के क्षेत्रों में बढ़ती है तथा उन लोगों की अपेक्षा शिक्षित व्यक्तियों की सेवा करती है जिनके पास शैक्षणिक अवसर या योग्यता नहीं है।

इससे दो शिक्षाएं मिलती हैं : पहली, ग्रामीण क्षेत्रों में ही हम शहरी गरीबी की दीर्घकालीन समस्याओं का समाधान प्रभावकारी ढंग से कर सकते हैं और इसके साथ-साथ जन समुदाय के उस दारुण दुःख को भी दूर कर सकते हैं जो गांवों में व्याप्त है लेकिन जिसे शहरी प्रबुद्ध जन और प्रबुद्ध वर्ग द्वारा शासित सरकार ने अभी तक नहीं पहचाना है। दूसरी, गरीबी से लड़ाई उत्पादन तकनीक और पूंजी-निवेश का प्रश्न नहीं है। यह एक बहुत उच्च राजनीतिक विषय है। इसमें विद्यमान संपत्ति के

वितरण से संबंधित मामले और देश भर में वर्तमान शक्ति के स्थानों के मामले निहित हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि वर्तमान सभी नीतियों में संशोधन न करके आमूलचूल परिवर्तन किए जाएं। इन नीतियों के फलस्वरूप कुछेक लोगों ने शक्तिशाली निहित स्वार्थ पैदा कर लिए हैं और इन नीतियों में आमूलचूल परिवर्तन करने पर ये व्यक्ति हर संभव तरीके से कठोर उपायों के प्रति विरोध प्रकट करेंगे। लेकिन हमारे सामने विकल्प भी स्पष्ट हैं अर्थात् क्या हम वर्तमान भ्रष्ट और बर्बाद करने वाली पद्धति को बनाए रखें अथवा उस आर्थिक संवृद्धि का चयन करें जिसमें संपन्न कृषि, खाद्यान्न की प्रचुरता और सभी के लिए अन्य मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन हैं।

स्वेच्छा से निर्दिष्ट लाभों को, जो शहरीकरण को आकर्षक बनाते हैं, अलग करना पड़ेगा और उन मूल्य-निर्धारण, आपात-निर्यात, निवेश, शैक्षिक, चिकित्सीय और अन्य नीतियों को निष्क्रिय करना होगा जो गांवों से शहरों को आय स्थानांतरित कर रही हैं और सबसे योग्य ग्रामवासियों को भी उनके अनुसरण के लिए प्रोत्साहित कर रही हैं। प्रारंभिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, ग्रामीण जल-आपूर्ति, ग्रामीण सड़क-निर्माण, ग्रामीण विद्युतीकरण, भूमिहीन श्रमिकों के परिवारों के लिए आवास-गृहों का निर्माण और स्वच्छता-सुविधाओं को शामिल करके सरकार को संशोधित न्यूनतम आवश्यकताओं के कार्यक्रम को अधिक शक्ति से आगे बढ़ाना होगा; क्योंकि इनसे ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन की गुणवत्ता को सुधारा जा सकेगा। हर संभव प्रयास करने होंगे ताकि कृषि-उत्पादन की वृद्धि की दृष्टि से किसानों को आवश्यक निविष्टियां मिल सकें। इसके अलावा, भंडारन, परिवहन, प्रक्रमण और व्यवस्थित बाजार की समन्वित संरचना को भी स्थापित करना होगा जो बेईमान व्यापारियों की पकड़ से किसानों को बचा सके और इसके अतिरिक्त उन्हें फल तथा साग-सब्जियां और दूध तथा मक्खन के उत्पादन में प्रोत्साहित कर सके। इसके अलावा, विशुद्ध कृषि कार्यों के अलावा आर्थिक कार्यकलापों में रोजगार के अवसर बनाने होंगे, यथा—हस्तशिल्पों को पुनर्जीवित अथवा उन्हें नए सिरे से स्थापित करना होगा और साथ ही इस प्रकार के छोटे पैमाने के उद्योग अपनाने होंगे जिनमें बड़े पैमाने के उद्योगों की अपेक्षा नियत निवेश के प्रति यूनिट अपेक्षाकृत अधिक रोजगार की संभावना रही है। गोबर गैस संयंत्र, पवन-चक्कियां, सूर्य-ताप यूनिटें और सूर्य-ऊर्जा द्वारा चालित सिंचाई के छोटे संयंत्रों जैसी सुविधाओं की व्यवस्था अथवा स्थापना से नीरसता दूर होगी और ग्रामीण जीवन में रोचकता बढ़ेगी तथा उत्पादन के लिए सहायक यंत्रों जैसी सुविधा मिलेगी। वास्तव में, हमें वे हर संभव उपाय करने हैं जो गांवों को लंगर के समान बनाने की आवश्यकता को पूरा करें और जहां बढ़ती हुई जनसंख्या को रहने के लिए वास्तविक स्थान मिल सके।

इसलिए गांवों की समस्याओं के निराकरण के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त निवेश ही इसका उपाय है। यही एक ऐसा निदान है जिसकी सहायता से गांवों से

शहरों को भारी संख्या में जाने वाले लोग रुक सकेंगे। यदि सरकार को एक बार गरीबी की समस्या का आवश्यक बोध हो जाता है तो इसके लिए आवश्यक वित्तीय साधनों को, प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। आज ग्रामीण क्षेत्रक में जो बेशी उत्पादन होता है जिसे वर्तमान नीतियों के अंतर्गत शहरी क्षेत्रक ले लेता है और नई नीतियों के अंतर्गत उपलब्ध नए बेशी उत्पादन दोनों अल्प समय में ही ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता को सुधारने के लिए पर्याप्त होंगे।

लेकिन वर्तमान नीतियों में उस समय तक कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हो सकता जब तक उस शक्ति-संरचना में मूलभूत परिवर्तन न हो जाए जो आज देश में व्याप्त है। अधिकांश रूप से शहरों में जन्मे राजनीतिज्ञों और प्रशासकों ने ही ग्रामीण क्षेत्रों का शोषण किया है तथा अत्यधिक ग्रामीण गरीबों और न्यूनतम शहरी धनिकों के बीच खाई को और चौड़ा किया है। हमारे गांवों की अधिकांश जनता गरीब है और यह जनता दिन-प्रतिदिन अधिक गरीब होती जा रही है और उसकी अवनति बढ़ते-बढ़ते अकिंचनता का रूप धारण कर लेगी, यदि हमारी योजना में और प्रशासन के अंतर्गत शहरी पक्षपात को न हटाया गया।

नौकरशाही की संवृद्धि और परिलब्धियां

आंकड़ों से यह विदित होगा कि केन्द्र और राज्य सरकारों में नौकरशाही की बड़ी तेजी से संवृद्धि हुई है। इस नौकरशाही में ऐसे व्यक्ति शामिल हैं जो यथार्थ रूप से कुछ भी पैदा नहीं करते अपितु उन लोगों द्वारा देय करों से उनका पोषण होता है जो कुछ न कुछ पैदा कर लेते हैं। संसाधनों के संकट का यही मुख्य कारण है जिसका सामना भारत सरकार विशेष रूप से तीसरी योजना (1961-66) के अंत से कर रही है और इससे लगातार अर्थव्यवस्था में नियोजित निवेश के स्तर की वृद्धि रुकी है ताकि आम जनता के रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठाया जा सके।

31 मार्च, 1947 से 31 मार्च, 1975 तक कुल मिलाकर नौकरशाही, यथा—केन्द्र और राज्य सरकारों, अर्ध-सरकारी स्थापनाओं तथा स्थानीय निकायों के सभी कर्मचारियों (सशस्त्र सेनाओं को छोड़कर) की संख्या में छह गुनी वृद्धि हुई है जिसका कारण यह है कि इनके पास किसी न किसी रूप में अपनी वृद्धि की दर को निर्धारित करने की शक्ति तो रही ही है। 31 मार्च, 1956 को यह संख्या 53.44 लाख थी। आगामी दो पृष्ठों का विवरण 'इकनॉमिक रिव्यू', 1979-80, भारत सरकार से लिया गया है। 1961 से 1979 की अठारह वर्षों की अवधि के दौरान यह संख्या 70.50 लाख से बढ़कर 149.04 लाख हो गयी है अर्थात् यह वृद्धि 210 प्रतिशत से अधिक हुई है।

जून, 1979 में केंद्रीय सरकार के असैनिक कर्मचारियों की संख्या बढ़कर 31.5 लाख हो गई और देश भर में सरकारी कर्मचारियों की कुल संख्या 151 लाख रही जबकि कृषि क्षेत्रक को छोड़कर निजी क्षेत्रक में केवल 71 लाख से कुछ अधिक लोग काम

पर लगाए गए थे। उद्योग और सेवा क्षेत्रकों में 10 व्यक्तियों में से 7 व्यक्ति अकेले सरकारी कार्यालयों में ही काम करते रहे। यह विशाल कर्मचारी वर्ग भी अपने लिए 'समर्पित सेवाओं' के व्यय को बढ़ाता रहा है, यथा—कारों और टेलीफोन जैसी सेवाओं के लिए अधिक व्यय हुआ है। यह अनुमान लगाया जाता है कि भारतीय सड़कों पर जो सवारी कारें चलती हैं, उनमें से 60 प्रतिशत कारों का उपयोग सरकार करती है। प्रति 5 टेलीफोन में से एक टेलीफोन सरकार का होता है, और प्रति तीसरा यात्री जो रेल की प्रथम श्रेणी में यात्रा करता है, वह सरकारी कर्मचारी है।

इस शताब्दी के छठे और सातवें दशकों में सरकारी कर्मचारियों की संख्या में 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और अब भी प्रतिवर्ष 4.5 से लेकर 5 प्रतिशत की दर से वृद्धि हो रही है लेकिन इस अवधि में इस देश में सकल राष्ट्रीय उत्पाद में केवल 3 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसलिए यह स्पष्ट है कि सरकार अर्थव्यवस्था के शेष क्षेत्रकों की बेशी का अधिकाधिक उपयोग कर रही है ताकि वह अपने उपभोग व्यय को वित्त-पोषित कर सके। स्पष्ट रूप से इसलिए सरकार अर्थव्यवस्था पर परजीवी के रूप में जी रही है।

सर्वजनिक क्षेत्रक में पूंजीनिवेश पर आधारित सार्वजनिक रोजगार की वृद्धि के प्रभाव विध्वंसक रहे हैं। तीसरी योजना के अंतिम वर्ष 1965-66 में लगभग 15 प्रतिशत कर तथा कर से इतर राजस्व में से सरकारी बचत राष्ट्रीय आय का 3.3 प्रतिशत थी। चौथी योजना की अवधि में ये बचतें राष्ट्रीय आय के 2.0 से 2.6 प्रतिशत तक गिर गई हैं यद्यपि राष्ट्रीय आय में कुल सरकारी राजस्व में 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई। उस समय से कुल राजस्व के 22.8 प्रतिशत में से राष्ट्रीय आय का 4.8 प्रतिशत भाग सरकारी बचतों के रूप में बढ़ गया है जो कि फसलों की बेशी उपज और विदेशों से प्रेषणों के आने के कारण संभव हुआ है।

सरकारी रोजगार को आम जनता की सहायता अथवा सेवा का साधन समझने के बजाय कांग्रेस पार्टी ने, जिसने अगस्त, 1947 से लेकर अब तक अप्रैल, 1977 से दिसंबर, 1979 की अल्प अवधि को छोड़कर देश में शासन किया है, इसे बेरोजगारों के रोजगार के साधन या स्रोत के रूप में समझा है, यहां तक कि ऐसे अक्षम बेरोजगार युवकों के लिए भी इसे साधन मान लिया, जो वास्तविक जनकार्य के लिए अनावश्यक थे, या जिन्हें काम पर लगे व्यक्ति को निष्पादित करना था।

तालिका 134

(मार्च के अन्त तक) सार्वजनिक क्षेत्रक में रोजगार

(आंकड़े लाखों में)

	1956	1961	1971	1972	1973	1974	1975	1976	1977	1978	1979(प)	जून 1979 (प)
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
(क) सार्वजनिक क्षेत्रक की शाखा द्वारा												
1. केंद्रीय सरकार	18.58	20.90	27.71	28.54	29.18	29.39	29.88	30.47	30.82	30.96	31.36	31.53
2. राज्य सरकारें	22.65	30.14	49.52	43.57	45.79	47.06	47.48	49.39	51.30	54.01	56.41	57.01
3. अर्ध सरकार *	6.60	7.73	19.29	21.75	25.78	29.12	31.92	33.92	36.75	39.29	41.44	41.22†
4. स्थानीय निकाय	7.43	11.73	18.78	19.19	19.00	19.28	19.40	19.85	19.89	20.15	20.64	20.66
योग	55.34	70.50	107.31	113.05	119.75	124.86	128.68	133.63	138.76	144.41	149.84	150.91
(ख) औद्योगिक वर्गीकरण, प्रभाग/संक्षिप्त विवरण										सार्वजनिक क्षेत्रक		निजी क्षेत्रक
1. कृषि, शिकार वनरोपण और मछली-पालन	1.80	2.76	2.89	3.05	3.24	3.40	4.01	4.76	6.28	7.76	8.19	9.18
2. खनन और खदान	1.29	1.82	2.56	4.36	6.06	6.94	7.19	7.57	7.58	7.71	7.79	1.18
3. विनिर्माण	3.69	8.06	8.85	9.62	10.19	10.19	11.13	12.26	13.55	14.12	14.03	42.87

(क्रमशः)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
4. बिजली, गैस और जल आदि	2.24	4.35	4.63	4.94	5.37	5.07	5.36	5.63	5.99	6.36	6.38	0.34
5. निर्माण	6.03	8.80	9.22	10.17	9.97	9.56	9.92	10.09	9.98	10.31	10.34	0.76
6. थोक और परचून व्यापार आदि	0.94	3.28	3.79	4.16	4.94	0.53	0.56	0.76	0.83	0.99	1.03	2.80
7. परिवहन, भंडारन और संचार	17.24	22.17	22.56	23.03	23.14	23.63	24.18	24.67	25.20	26.90	26.16	0.77
8. वित्तीयन, बीमा, वास्तविक भूसंपत्ति आदि	—	—	—	—	—	4.92	4.90	5.34	5.80	6.46	6.57	2.03
9. सामुदायिक सामाजिक और वयक्तिक सेवाएं	37.27	56.07	58.57	60.41	62.32	64.44	66.39	67.68	69.18	70.22	70.41	11.32
	70.50	107.31	113.05	119.75	124.86	128.68	133.63	138.76	144.41	149.84	150.90	71.17

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण, 1979-80, तालिका 3.1 (स्तंभ 12 के अतिरिक्त, जिसे श्रम मंत्रालय के बुलेटिन, त्रैमासिक रोजगार समीक्षा, अप्रैल-जून, 1980 से लिया गया है।)

प=अस्थायी

* अर्धसरकारी स्थापनाओं में वे संगठन शामिल किए जाते हैं जो पूर्णतया या तत्त्वत: सरकार के स्वामित्व में होते हैं अथवा सरकार द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं (चाहे वे निगमित हों या नहीं हों) उदाहरणार्थ, भारतीय जीवन बीमा निगम, भारतीय रिजर्व बैंक, राष्ट्रीयकृत बैंक, हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड, पोर्ट ट्रस्ट इंडियन एयर लाइन्स, एयर इण्डिया आदि-आदि।

† 41.72 लाख के आंकड़े में केन्द्रीय सरकार द्वारा नियंत्रित उसके स्वामित्व में अर्धसरकारी स्थापनाओं के 25.56 लाख कर्मचारी और राज्यों से ऐसी स्थापनाओं के 16.16 लाख कर्मचारी शामिल किए गए हैं।

टिप्पणियां :

1. गोवा, दमन और दीव के संघीय राज्यक्षेत्र के संबंध में विवरण मार्च, 1970 से आगे शामिल किए गए हैं। जम्मू और कश्मीर के लिए मार्च, 1972 से आगे और मिजोरम के लिए मार्च 1975 से आगे के विवरण शामिल किए गए हैं परंतु मणिपुर के लिए 1975 और 1976 के विवरण छोड़ दिए गए हैं।
2. मार्च, 1972 से आगे तक सार्वजनिक क्षेत्रक में रोजगार की वृद्धि मुख्य रूप से सरकार द्वारा कोकिंग कोयला खानों के लिए जाने से और बाद में निजी क्षेत्रक से सार्वजनिक क्षेत्रक में रोजगारों के स्थानांतरित किए जाने के फलस्वरूप हुई है।
3. राष्ट्रीय औद्योगिक वर्गीकरण (1970) 1 अप्रैल, 1975 से प्रारंभ किया गया है और इस प्रकार 1975 से 1978 तक के आंकड़ों की तुलना पूर्व के वर्षों के आंकड़ों से नहीं की जा सकती। मार्च, 1975 पूर्व के आंकड़े मानक औद्योगिक वर्गीकरण (1960) पर आधारित हैं।

अक्टूबर, 1970 में पटना में आयोजित अधिवेशन में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने संकल्प पारित किया, बल्कि दिल्ली स्थित अपनी सरकार से सिफारिश की कि शिक्षित युवकों में बेरोजगारी दूर करने की दृष्टि से पांच वर्षों की अवधि में इतनी संख्या में स्थान बनाए जाएं कि कम से कम प्रत्येक परिवार के कमाने वाले सदस्य को 100 रुपए प्रतिमास की आय की व्यवस्था हो सके। 'टाइम्स आफ इंडिया', नई दिल्ली ने अपने 24 जून, 1972 के संपादकीय में समीक्षा करते हुए यह लिखा है :

> "इस देश को अधिकाधिक पुरानी समस्याओं का सामना करना पड़ता है और इनकी जड़ में केवल एक ही कारण का पता लगता है : सरकार गैर-विकासात्मक व्यय की संवृद्धि को समाप्त करने में सफल नहीं हुई है। 1960-61 और 1969-70 की अवधि के दौरान केंद्रीय और राज्य सरकारों के अतिरिक्त कर के राजस्वों से कुछ ही अधिक व्यय की राशियां बढ़ी हैं। इससे अर्थव्यवस्था के निवेश की दर को बढ़ाने के सभी प्रयत्न निष्फल हो गए।
>
> "अर्थव्यवस्था के लगभग सभी क्षेत्रकों में आर्थिक कार्यकलाप के सभी क्षेत्रों में संवृद्धि-दर अपेक्षाकृत कम रही जबकि योजनाओं में इससे अधिक प्रत्याशा की गई थी। जहां तक सार्वजनिक प्रशासन का संबंध है, संवृद्धि-दर चार गुनी अधिक है—अर्थव्यवस्था की दो प्रतिशत की तुलना में प्रतिवर्ष 7.9 प्रतिशत की संवृद्धि-दर है। इस शताब्दी के 7वें दशक में उद्योग में काम के एक स्थान और नौकरशाही तंत्र के अंतर्गत काम के दो स्थानों का सृजन किया गया और 1961 की तुलना में केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों को केवल 1971 में ही महंगाई भत्ते के अतिरिक्त भुगतान से एक वर्ष में 300 करोड़ रुपए का अधिक व्यय किया गया।"

20वीं शताब्दी के 8वें दशक में योजना-विकास व्यय और योजना-इतर विकास व्यय का योग भारत सरकार और राज्यों के कुल कर तथा कर इतर राजस्वों के लगभग बराबर है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सरकारी बचतें वर्तमान पूंजी

के बनाए रखने के लिए ही पर्याप्त थीं। चौथी योजना में पूंजी में कुल वृद्धियां घरेलू क्षेत्रक से ऋण राशियों द्वारा वित्तपोषित की गई हैं।

श्री प्रेमशंकर झा[1] ने बताया है, "रोजगार पैदा करने पर इसका प्रभाव खराब रहा है। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि एक चपरासी को नौकरी दिलाने के लिए सरकार को प्रतिवर्ष 7,000 रुपए व्यय करना पड़ता है। उसी चपरासी को 7,000 रुपए प्रतिवर्ष की दर से 30 वर्ष या इतने ही समय तक भुगतान करना है अर्थात् सबसे कम श्रेणी के चपरासी जैसा नया सरकारी पद बनाने के लिए 2,10,000 रुपए का व्यय होगा। इसकी तुलना में किसी भी उद्योग अथवा किसी भी उत्पादनशील क्षेत्रक में प्रथम वर्ष किसी पद के बनाने के लिए 30,000 रुपए का व्यय होगा और उसके बाद किसी अन्य निवेश की आवश्यकता नहीं होगी।

"कुल मिलाकर प्रथम तीन योजनाओं में किसी नौकरी के लिए निवेश लागत के रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के अनुमानों और 1970-71 में न्यूनतम परिलब्धियों के बारे में तीसरे वेतन आयोग की सिफारिशों और 1969-70 की कीमतों के आधार पर जबकि किसी अर्थव्यवस्था के नियोजित क्षेत्रक में किसी नौकरी के सृजन के लिए 15,000 रुपए की आवश्यकता होती थी तो इस प्रकार सरकार की किसी अतिरिक्त नौकरी के लिए प्रत्येक वर्ष 5,000 रुपए के हिसाब से 30 वर्षों के लिए कम से कम 1,50,000 रुपए (पेंशन को शामिल करके) आवश्यकता थी। **अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सरकारी क्षेत्रक में सृजित प्रत्येक अनावश्यक नौकरी ने अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों में 30 वर्षों की अवधि के लिए कम-से-कम 10 व्यक्तियों को नौकरी से वंचित कर दिया है।"**

सरकार ने संसद में एक उत्तर दिया है, उसके अनुसार 1976-77 में केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों को भुगतान किया गया समयोपरि भत्ता लगभग 49.41 करोड़ रुपए रहा लेकिन आवास, चिकित्सा और अन्य भत्ते अथवा छोटे-मोटे लाभों के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी योजना आयोग द्वारा अनुमानित किसी भी अतिरिक्त सरकारी नौकर (वर्ग 4) को काम पर लगाने की न्यूनतम लागत के आधार पर 1977-78 के लिए प्रतिवर्ष 7,000 रुपए के हिसाब से 110 लाख कर्मचारियों (1978 में 144 लाख जिसमें से 16 लाख सार्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रमों, दूसरे 14 लाख रेलवे और अनुमानित 4 लाख राज्य सरकार के उपक्रमों जिनके लेखों की अलग-अलग बजट व्यवस्था की गई है) के लिए 7,700 करोड़ रुपए की राशि होगी अथवा 1970-78 में केंद्रीय और राज्य के राजस्वों को मिलाकर 30 प्रतिशत से अधिक व्यय होगा। वास्तव में 10,000 रुपए प्रति वर्ष (830 रुपए प्रतिमास) प्रति कर्मचारी की औसत

1. देखिए 'इकनॉमिक टाइम्स', बंबई में 30 अक्टूबर, 1979 को प्रकाशित लेख—"ए मशरूमिंग ब्यूरोक्रेसी"।

पूंजी अधिक वास्तविक है। इस प्रकार एक वर्ष में संभवतः कुल व्यय 11 हजार करोड़ रुपए होता है। वर्ष 1976-77 में **यह व्यय कुल केंद्र और राज्य की पूंजियों का 42 प्रतिशत है और 1976-77 में ही चालू कर तथा कर से इतर राजस्वों को मिलाकर राशि का 70 प्रतिशत है।** स्पष्टतया किसी भी संगठित क्षेत्रक में अर्थव्यवस्था और रोजगार के बढ़ाने का कोई भी प्रयत्न यहीं से प्रारंभ करना चाहिए।

ये आंकड़े अब से दो वर्ष पूर्व के हैं चूंकि सरकारी कर्मचारियों की संख्या बढ़ गई है और इसीलिए उनकी परिलब्धियां भी बढ़ गई हैं।

30 जून, 1979 को केंद्रीय सचिवालय के सरकारी कर्मचारियों को स्वीकृत विभिन्न भत्तों परिलब्धियों की सूची आगे दी गई है। शायद केंद्रीय सरकार से मंत्री को भी इस बात का पता नहीं है और संसद के सदस्यों की बात ही छोड़िए, कि इन कर्मचारियों को कितनी परिलब्धियां उपलब्ध कराई जाती हैं और वे यह नहीं जानते कि इनका राष्ट्रीय राजकोष पर क्या भार पड़ा है।

भत्ते

1. महंगाई भत्ता : अभी तक केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों को महंगाई भत्ते की 16 किस्तें भुगतान की जा चुकी हैं जो 328 के सूचकांक औसत स्तर की कीमत की वृद्धियों को पूरा करती हैं। अब महंगाई भत्ता इस शर्त के अधीन दिया जाता है कि वेतन और महंगाई भत्ता 2,750 रुपए से अधिक न हो; फिर भी 2,750 रुपए के वेतन स्तर से ऊपर महंगाई भत्ता 150 रुपए प्रतिमास की एक समान दर से भुगतान किया जाता है।

2. मकान किराया भत्ता : यह भत्ता उन कर्मचारियों को भुगतान किया जाता है जिन्हें सरकारी आवास नहीं दिए गए हैं। दिल्ली में यह भत्ता वेतन का 15 प्रतिशत की दर से दिया जाता है किंतु शर्त यह है कि यह भत्ता अधिकतम 400 रुपए प्रतिमास होगा।

3. प्रतिकर (नगर) भत्ता : यह भत्ता उस शहर के रहन-सहन की ऊंची लागत को पूरा करने के लिए भुगतान किया जाता है जहां कर्मचारी का कार्यस्थल स्थित हो। दिल्ली में प्रतिकर (नगर) भत्ता की दर वेतन का $6\frac{1}{2}$ प्रतिशत है किंतु प्रतिबंध यह है कि 250 रुपए के वेतन स्तर से नीचे न्यूनतम 12 रुपए की राशि का भुगतान किया जाएगा और 250 रुपये पाने वाले कर्मचारियों तथा इससे अधिक पाने वाले कर्मचारियों को यह भत्ता वेतन का 6 प्रतिशत भुगतान किया जाएगा किंतु प्रतिबंध यह है कि 75 रुपए की अधिकतम राशि का भुगतान किया जाएगा।

4. समयोपरि भत्ता : यह भत्ता सामान्यतया उन अराजपत्रित कर्मचारियों को भुगतान किया जाता है जिनका वेतन 750 रुपए प्रतिमास है और यह भत्ता उस कार्य के लिए दिया जाता है जो किसी कर्मचारी के सामान्य कार्य-समय के अलावा कार्य

किया हो। सामान्यतया इस भत्ते की अधिकतम सीमा कर्मचारियों की मासिक परि-लब्धियों का 1/3 भाग है।

5. बच्चों की शिक्षा का भत्ता : यह भत्ता उन कर्मचारियों को भुगतान किया जाता है जिनका वेतन प्रतिमास 1,200 रुपए होता है और जिनके बच्चे कर्मचारियों की तैनाती के स्थान में वांछनीय स्तर के स्कूल की अनुपलब्धता के कारण उनकी तैनाती/आवास से दूर उनके बच्चों को पढ़ना होता है। यदि दिल्ली में नौकरों की तैनाती की जाए तो यह भत्ता सामान्यत: भुगतान नहीं किया जाता क्योंकि यह शर्त अधिकांश मामलों में पूरी नहीं होती।

6. शिक्षा शुल्क की प्रतिपूर्ति : 1,200 रुपए प्रतिमास तक वेतन पाने वाले कर्मचारियों के मामले में उनके बच्चों के अध्ययन के लिए मान्यताप्राप्त स्कूलों में ली गई फीस की प्रतिपूर्ति उस सीमा तक कर दी जाती है जो इसी स्तर तक की कक्षाओं के लिए सरकारी स्कूलों में फीस ली जाती है। यह रियायत उन बच्चों के लिए उप-लब्ध है जो उच्च-माध्यमिक स्तर तक अध्ययन करते हैं।

7. छात्रावास सहायता : छात्रावास सहायता उन कर्मचारियों के लिए स्वीकार्य है जो अपने स्थानांतरण के कारण अपने बच्चों को छात्रावास में दाखिल कराते हैं। छात्रावास की सहायता प्रति बच्चा 60 रुपए प्रतिमास की समान दर के हिसाब से दी जाती है और यह सहायता तीन बच्चों तक ही सीमित है।

8. पुस्तकों पर व्यय : यदि कोई कर्मचारी शैक्षिक सत्र के मध्य में ही स्थानांत-रित कर दिया जाता है और वह अपने बच्चों को ऐसे स्कूलों में भेजता है जहां नई पुस्तकों के खरीदने की आवश्यकता है तो उसे जिन दरों के हिसाब से सहायता दी जाती है वे इस प्रकार हैं :

प्राथमिक कक्षा	20 रुपए प्रति बच्चा
माध्यमिक कक्षा	40 रुपए प्रति बच्चा
उच्च माध्यमिक कक्षा	60 रुपए प्रति बच्चा

यह रियायत उन कर्मचारियों के लिए उपलब्ध है जिन्हें 1,600 रुपए प्रतिमास वेतन मिलता है और यह रियायत अधिकतम चार बच्चों तक ही स्वीकार्य है।

9. रात्रि-ड्यूटी का भत्ता : यह भत्ता सचिवालय के कार्यालयों में रात्रि-ड्यूटी वाले क्लर्कों को भुगतान किया जाता है और यह भत्ता उन चपरासियों को भी दिया जाता है जो उन क्लर्कों से संबद्ध हैं। ये कर्मचारी जब कार्यालय बन्द होता है उस समय से लेकर दूसरे दिन कार्यालय खुलने के समय तक प्राप्ति और निर्गम अनुभागों में काम करते हैं। इस भत्ते की दर रात्रि-ड्यूटी क्लर्कों के लिए 6.50 प्रति रात्रि और उनसे संबद्ध चपरासियों के लिए 3.00 रुपए प्रति रात्रि है।

10. संसद सहायकों को विशेष भत्ता : अनन्य रूप से संसदीय कार्य में लगाए गए सहायक और मंत्रियों से उनके संसदीय कार्यों में संबद्ध सहायकों को संसद सत्र की अवधि के दौरान 200 रुपए प्रतिमास का विशेष वेतन दिया जाता है।

11. सरकारी आवास : सरकारी कर्मचारियों को सहायता प्रदत्त किराये के

आवासीय घर आवंटित किए जाते हैं जबकि यह किराया उनके वेतन का 10 प्रतिशत अथवा मानक किराया लिया जाता है और इनमें से जिस किसी की भी अपेक्षाकृत कम राशि हो, वही वसूल की जाती है ।

12. साइकिल भत्ता : साइकिल भत्ता 8 रुपए प्रतिमास की दर से विभागाध्यक्ष द्वारा उस व्यक्ति के लिए स्वीकृत किया जाता है जिसको अपने पद के अनुसार मुख्यालय के आस-पास काफी यात्रा करने की आवश्यकता होती है और इस उद्देश्य के लिए संबंधित कर्मचारी को अपनी साइकिल रखनी पड़ती है तथा उसे अपनी साइकिल सरकारी कार्यों के लिए उपयोग में लानी होती है ।

13. सरकारी नौकर की तैनाती के स्थान से अलग स्थान पर पढ़ने वाले बच्चों के लिए यात्रा भत्ता : बच्चों को वर्ष में एक बार 150 किलोमीटर से दूर स्थित भारत की शिक्षा संस्थाओं के स्थान से लेकर भारत में सरकारी कर्मचारियों के तैनाती के स्टेशनों तक अपने माता-पिता के साथ स्वीकृत छुट्टियों में रहने के लिए दूसरी श्रेणी का रेल किराया दिया जाता है लेकिन इसके साथ ही साथ शर्त यह भी है कि बच्चे उस स्थान पर रह रहे हों जहां परिवार नहीं रहता है ।

14. सेवा-निवृत्त होने पर यात्रा भत्ता : यात्रा भत्ता जिसमें स्थानांतरण अनुदान, वैयक्तिक सामान / सवारी के परिवहन को शामिल किया जाता है, स्थायी / स्थायीवत सरकारी कर्मचारियों के लिए सेवा-निवृत्त होने पर अथवा इसी प्रकार किसी अन्य समय आदि पर उनके चुने गए आवास-स्थल तक स्थायी रूप से वहां रहने के उद्देश्य के लिए की गई यात्रा के संबंध में दिया जाता है ।

15. किसी ऐसे सरकारी नौकर के परिवार के सदस्यों को यात्रा भत्ता जिनका अपने सेवा काल में निधन हो जाता है : यह यात्रा भत्ता उसी स्तर पर दिया जाता है जैसा कि पिछली मद में उल्लेख किया गया है और यह भत्ता अपने गृह-नगर तक स्वीकार किया जाता है ।

16. नेत्रहीन और विकलांग केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए यात्रा-भत्ता : नेत्रहीन और विलकांग कर्मचारियों के लिए उनके मूल वेतन के 10 प्रतिशत के हिसाब से 50 रुपए प्रतिमास अधिकतम सवारी भत्ता दिया जाता है। विकलांगों के मामले में यह भत्ता उसी समय स्वीकृत है जबकि ऊपर और नीचे के दोनों ही अंगों में न्यूनतम 40 प्रतिशत स्थायी आंशिक रूप से विकलांगता हो ।

17. छुट्टी यात्रा रियायत : (क) सरकारी नौकरों को यह अधिकार है कि वे सरकारी खर्चे पर 2 वर्षों में एक बार अपने गृह-नगर को जाने की सुविधा उठा सकें लेकिन शर्त यह है कि सरकारी कर्मचारियों को प्रथम 400 किलोमीटर तक (ग्रुप 'डी' के कर्मचारियों को 160 किलोमीटर तक) जाने और आने की यात्रा का व्यय स्वयं वहन करना होगा ।

(ख) सरकारी नौकरों को भारत में चार वर्ष में एक बार सरकारी खर्चे पर अपने गृह-नगर को छोड़कर किसी अन्य स्थान को देखने के लिए प्रथम 400 किलोमीटर के लिए बिना भुगतान किए हुए (ग्रुप 'डी' के कर्मचारियों के लिए 160 किलो-

मीटर तक) छुट्टी यात्रा रियायत दी जाती है। इसके एवज में एक गृह छुट्टी रियायत समायोजित कर ली जाती है।

18. सरकारी कर्मचारियों के लिए स्वीकार्य अग्रिम राशियां : सभी ग्रुप 'डी' और ग्रुप 'सी' कर्मचारियों यथा स्टाफ कार ड्राइवरों आदि को वर्दियां दी जाती हैं। उन्हें दी जाने वाली वस्तुएं इस प्रकार हैं :

गर्मी की वर्दियां	**सर्दी की वर्दियां**
बटन लगे कोट (सूती), सूती पैंटें, चप्पलें, टोपियां अथवा साफ़े।	बटन लगे ऊनी कोट, ऊनी पैंटें, ऊनी टोपियां या साफ़े, जूते, ऊनी मोज़े, ऊनी पूरी बांहों की जर्सियां।
महिला कर्मचारियों के लिए साड़ी, सफेद ब्लाउज, सफेद चप्पलें।	लेडीज़ हाफ़ कोट (ऊनी), पूरी बांह की ऊनी जर्सियां, ऊनी मोज़े, लेडीज़ जूते।

19. धुलाई भत्ता : उन कर्मचारियों को चार रुपए प्रतिमास धुलाई भत्ता दिया जाता है जो वर्दियां पाने के अधिकारी हैं।

20. मोटर कार-अग्रिम राशि :

पहले अवसर पर—	20,000 रुपए अथवा 20 महीने का वेतन अथवा कार की प्रत्याशित कीमत, जो भी कम हो।
दूसरी बार या उसके बाद के अवसर पर—	15,000 रुपए या 15 महीने का वेतन, जो भी कम हो। इससे पूर्व गाड़ी के बिक्री-अग्रिम राशि में से कम कर दी जाएगी।

21. स्कूटर / मोटर साइकिल-अग्रिम राशि :

पहले अवसर पर—	3,500 रुपए या 10 महीने का वेतन अथवा मोटर साइकिल की प्रत्याशित कीमत जो भी कम हो।
दूसरी या उसके बाद के अवसर पर—	2,750 रुपए या 8 महीने का वेतन जो भी कम हो। इससे पूर्व की गाड़ी की बिक्री राशि भी अग्रिम में काट ली जाएगी।
22. बाइसिकल-अग्रिम राशि :	272 रुपए। यह अग्रिम राशि उन कर्मचारियों को स्वीकृत की जा सकती है जिनका मूल वेतन 600 रुपए से अधिक नहीं है।
23. टेबल फैन-अग्रिम राशि :	100 रुपए। यह अग्रिम राशि ग्रुप 'डी' के कर्मचारियों को स्वीकृत की जा सकती है।

24. **त्योहार-अग्रिम राशि :** 200 रुपए। जिन कर्मचारियों को 600 रुपए तक मूल वेतन मिलता है वे इस अग्रिम राशि को पाने के अधिकारी हैं (इस अग्रिम राशि पर कोई ब्याज नहीं लिया जाता है।)

25. **प्राकृतिक आपदा के समय में अग्रिम राशि :** अराजपत्रित कर्मचारियों को ब्याज रहित 500 रुपए या 3 महीने का वेतन, जो भी कम हो, स्वीकृत किया जा सकता है यदि उनकी सम्पत्ति प्राकृतिक आपदा से उस क्षेत्र में क्षत-विक्षत हो गई हो जो प्राकृतिक आपदा से ग्रस्त क्षेत्र घोषित किया गया है।

26. **गृह-निर्माण-अग्रिम राशि :** 1.25 लाख रुपए अथवा 75 महीनों का वेतन, जो भी कम हो।

छुट्टी का अधिकार

27. केंद्रीय सिविल सेवाओं (छुट्टी) के नियम, 1972

1	2	3	4	5
छुट्टी का प्रकार	छुट्टी अर्जित करने की दर	छुट्टी एकत्रित की जाने वाली सीमा	एक समय में छुट्टी लेने की सीमा	अन्य विवरण
1. अर्जित छुट्टी	30 दिन प्रतिवर्ष	180 दिन	120 दिन	जमा कर दी जाती है, अग्रिम रूप से पहली जनवरी और पहली जुलाई को 15-15 दिन की छुट्टी जमा कर दी जाती है।

सेवा-निवृत्त होने के समय 180 दिनों की अधिकतम छुट्टी, जो न ली गई हो, अर्जित छुट्टी है, और उसके नकद भुगतान की स्वीकृति दी जाती है :

2. अर्धवेतन छुट्टी	सेवा के प्रत्येक पूरे वर्ष के लिए 20 दिन	कोई	सीमा नहीं	कुछ परि॰ स्थितियों में कतिपय सीमाओं के अधीन अर्धवेतन छुट्टी के भविष्य के अधिकार के एवज में अर्ध-वेतन छुट्टी ली जा सकती है।

1	2	3	4	5
3. परिवर्तित छुट्टी	अर्धवेतन छुट्टी को चिकित्सा-प्रमाणपत्र के आधार पर पूरे वेतन की छुट्टी में परिवर्तित किया जा सकता है।			
4. बिना वेतन और भत्तों के असाधारण छुट्टी	अस्थायी कर्मचारी		एक ही बार में 90 दिन	चिकित्सा आधारों पर ऐसी छुट्टी के लिए ऊंची सीमाएं भी निर्धारित की जाती हैं।
	स्थायी और स्थायीवत कर्मचारी		कोई सीमा नहीं है सिवाय इसके कि एक बार में सभी प्रकार की छुट्टियों में 5 वर्षों की अनुपस्थिति हो सकती है।	
5. महिला कर्मचारियों के लिए प्रसूति छुट्टी			90 दिन	पूरे वेतन और भत्तों के साथ। यह छुट्टी छुट्टी के लेखे में नहीं जोड़ी जाती है।

28. आकस्मिक छुट्टी और छुट्टियां

1. आकस्मिक छुट्टी		कैलेंडर वर्ष में 12 दिन		आगामी वर्ष के लिए जोड़ी नहीं जा सकती।
2. छुट्टियां		कैलेंडर वर्ष में 18 दिन		इनमें दो प्रतिबंधित छुट्टियां शामिल की जाती हैं।
3. सभी रविवार और दूसरे शनिवार की छुट्टियां दी जाती हैं।				

पेंशन और अनुग्रह राशि (ग्रेच्युटी)

1. पेंशन : किसी भी सरकारी नौकर को दस वर्षों की न्यूनतम सेवा पेंशन पाने का अधिकारी बना देती है। पेंशन के लिए अधिकतम नौकरी की अवधि 33 वर्ष मानी जाती है। अधिकांश कर्मचारी जो 1000 रुपए या इससे कम राशि का वेतन पाते हैं उन्हें गत दस महीनों की परिलब्धियों के औसत के 50 प्रतिशत के हिसाब से

पेंशन दी जाती है। अब अधिकतम पेंशन 1,500 रुपए प्रतिमास दी जाती है जिसमें 328 के औसत सूचकांक स्तर पर दी जाने वाली सहायता भी शामिल है।

2. सेवा अनुग्रह राशि (ग्रेच्युटी) : स्थायी कर्मचारियों को दस वर्षों की सेवा कर लेने के बाद सेवा अनुग्रह राशि (ग्रेच्युटी) पाने का अधिकार हो जाता है। प्रत्येक छः महीने की अवधि की सेवा पूरी करने पर आधे मास के वेतन की दर से सेवा अनुग्रह राशि (ग्रेच्युटी) का हिसाब लगाया जाता है।

3. सात्रिक अनुग्रह राशि (टर्मिनल ग्रेच्युटी) : अस्थायी कर्मचारियों, जिनकी सेवा 5 वर्षों से कम न हो और 10 वर्षों की सेवा से कम हो, को सेवा के पूरे वर्ष के लिए $\frac{1}{3}$ मासिक वेतन की दर से अनुग्रह राशि (ग्रेच्युटी) पाने का अधिकार है। 10 वर्षों की सेवा पूरी करने के बाद अनुग्रह राशि (ग्रेच्युटी) की दर सेवा के प्रत्येक वर्ष के लिए एक महीने का वेतन होती है जिसकी सीमा 15 महीनों के वेतन अथवा 15,000 रुपए, जो भी कम हो, तक होती है।

4. मृत्यु तथा सेवा-निवृत्ति अनुग्रह राशि (ग्रेच्युटी) : स्थायी कर्मचारियों को 5 वर्षों की सेवा से अधिक सेवा करने पर सेवा के प्रति छः महीनों की अवधि के लिए $\frac{1}{4}$ मासिक वेतन की मृत्यु तथा सेवा-निवृत्ति अनुग्रह राशि (ग्रेच्युटी) पाते हैं। इसकी अधिकतम सीमा $16\frac{1}{2}$ महीनों का वेतन या 30,000 रुपए, इनमें से जो भी कम हो, तक होती है।

5. परिवार पेंशन : यह पेंशन उन नियमित सरकारी कर्मचारियों के परिवारों के लिए उपलब्ध की जाती है जो अपने कार्यकाल में ही काल-कवलित हो जाते हैं और यह पेंशन पेंशन-प्राप्तकर्ताओं के परिवारों को भी इसी दशा में दी जाती है। इस पेंशन की न्यूनतम और अधिकतम दरें क्रमशः 60 रुपए और 250 रुपए हैं। प्रथम सात वर्षों के लिए परिवार पेंशन सामान्य दरों से दूनी दरों पर स्वीकृत की जाती है।

6. पेंशनभोगी मृतक सरकारी नौकर की विधवा/विधुर को जीवनपर्यंत अथवा फिर से विवाह करने के समय तक पेंशन पाने का अधिकार है; यह अधिकार बच्चों को भी दिया जाता है। इसकी अवधि उस समय तक है जब तक सबसे छोटा बच्चा 21 वर्ष (यदि बेटा हो) अथवा 24 वर्ष (यदि बेटी हो) की आयु तक न पहुंच जाए। यदि इस प्रकार की परिवार पेंशन पाने का अधिकारी बच्चा विकलांग है तो उसे उसके जीवन-पर्यंत परिवार पेंशन दी जाती है।

मृत्यु तथा सेवा-निवृत्त अनुग्रह राशि (ग्रेच्युटी) : ऐसे सरकारी कर्मचारियों को जिनकी सेवाकाल में अकाल मृत्यु हो जाए और जिनकी सेवा की अवधि 5 वर्षों से कम हो तो उनके परिवारों को मृत्यु तथा सेवा-निवृत्त अनुग्रह राशि (ग्रेच्युटी) न्यूनतम 12 महीनों का वेतन और अधिकतम $16\frac{1}{2}$ महीनों का वेतन अथवा 30,000 रुपए की राशि का भुगतान किया जाता है।

ऐसे सरकारी नौकरों, जो अपने कार्यकाल में काल-कवलित हो जाते हैं, के परिवारों को तत्काल सहायता उपलब्ध कराने के उद्देश्य से शीघ्र ही तीन मास के वेतन अथवा 1,200 रुपए की राशि का भुगतान कर दिया जाता है और इस राशि का

समायोजन परिवार को दी जाने वाली अन्य राशियों में कर लिया जाता है।

केंद्रीय भविष्य निधि

(i) उन सभी कर्मचारियों के लिए जिन्होंने एक वर्ष से अधिक अवधि की सेवा कर ली है, वेतन के 6 प्रतिशत दर के हिसाब से अंशदान देना अनिवार्य है। सरकार 25,000 रुपए की शेष राशि पर 8 प्रतिशत की दर से ब्याज का भुगतान करती है और 25,000 रुपए के बाद की राशि पर $7\frac{1}{2}$ प्रतिशत ब्याज का भुगतान करती है। इसके अलावा यदि भविष्य निधि जमा करने वाले कर्मचारी ने लगातार पांच वर्षों की अवधि तक कोई राशि नहीं निकाली है तो इस प्रकार कुल राशि पर 1 प्रतिशत का अतिरिक्त प्रोत्साहन बोनस भी दिया जाता है। भविष्य निधि की जमा राशियों में से अग्रिम राशियां और आंशिक अंतिम आहरण निर्धारित नियमों के अनुसार विहित प्रयोजनों के लिए स्वीकृत किए जाते हैं।

(ii) **डिपाजिट लिंक्ड इंश्योरेंश स्कीम :** उन सरकारी नौकरों, जो अपने कार्यकाल में ही काल-कवलित हो जाते हैं, के परिवारों को भविष्य निधि लेखा में जमा राशियों के अतिरिक्त भविष्य निधि जमा करने वाले व्यक्ति के गत 3 वर्षों की जमा के औसत के बराबर राशि जो अधिकतम 10,000 रुपए तक हो सकती है, दी जाती है। विभिन्न प्रकार के भविष्य निधि जमाकर्ताओं के लिए कतिपय न्यूनतम शेष बनाए रखते हैं ताकि उनके परिवार इस लाभ के अधिकारी हो सकें।

(iii) **अंशदायी भविष्य निधि** : ऐसी स्थापनाओं में जहां कर्मचारियों को पेंशन नहीं दी जाती है, वहां अंशदायी भविष्य निधि की पद्धति प्रचलित है अर्थात् कर्मचारी को अपने वेतन का $8\frac{1}{3}$ प्रतिशत भाग का न्यूनतम अंशदान इस निधि को करना होता है। सरकार भी अंशदाता के अंशदान के बराबर ही उसके वेतन का $8\frac{1}{3}$ प्रतिशत भाग उस निधि में जोड़ती है। अंशदाता के अपने अंशदान में से अग्रिम राशियों और अल्प अंतिम आहरणों की सुविधाएं और ब्याज की दरें वैसी ही हैं जैसी कि सामान्य भविष्य निधि के लिए निर्धारित की जाती हैं। डिपौजिट लिंक्ड इंश्योरेंस स्कीम की सुविधा भी उपलब्ध है लेकिन यह कर्मचारी के अपने अंशदान पर ही मिलेगी।

चिकित्सा सुविधाएं

सरकारी कर्मचारी जो केंद्रीय सरकार स्वास्थ्य सेवाओं की योजना (सी० जी० एच० एस०) के क्षेत्रों में रहते हैं, को प्रतिमास अंशदान का भुगतान करके इन चिकित्सा सुविधाओं का लाभ उठा सकते हैं। केंद्रीय सरकार स्वास्थ्य सेवाओं की योजना जिन क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं है, वहां सरकारी कर्मचारियों को अपने उपचार तथा अपने परिवारों के सदस्यों के उपचार के लिए किए गए व्यय की प्रतिपूर्ति सिविल सर्विस (एम० ए०) रूल्स के अंतर्गत की जाती है।

इन दोनों ही मामलों में स्वीकृत चिकित्सालयों में बहिरंग रोगियों और अंतः रोगियों के रूप में उपचार किया जाता है।

स्वैच्छिक सेवा-निवृत्ति

सरकारी कर्मचारी स्वेच्छा से 20 वर्षों की अर्हता प्राप्त नौकरी के बाद सेवा निवृत्त हो सकता है। इस प्रकार के मामलों में 5 वर्षों तक का लाभ दिया जा सकता है और इसके हिसाब से पेंशन और मृत्यु तथा सेवा-निवृत्ति अनुग्रह राशि (ग्रेच्युटी) का आकलन किया जाता है लेकिन इसके लिए कुछ शर्तें भी हैं।

कोई भी कर्मचारी 30 वर्षों की अर्हता प्राप्त सेवा की पूर्ति के बाद सेवा-निवृत्त हो सकता है। ग्रुप 'ए' और 'बी' के कर्मचारी 50 वर्षों की आयु प्राप्त करने पर सेवा-निवृत्त हो सकते हैं। इन मामलों में किसी प्रकार का कोई अतिरिक्त लाभ नहीं दिया जाता है।

ऐसे सभी कर्मियों को सानुपातिक पेंशन और मृत्यु तथा सेवा-निवृत्ति अनुग्रह राशि (ग्रेच्युटी) उनकी अर्हता प्राप्त सेवा काल के अनुसार दी जाती है। उन्हें उन सभी देय तथा स्वीकार्य छुट्टियों का लाभ उठाने की स्वीकृति दी जाती है और ऐसी छुट्टी के लिए एक ही बार में एकमुश्त राशि का भुगतान किया जाता है। अन्य सेवा-निवृत्ति के लाभ तथा सहायता और पेंशन छुट्टी वेतन में से काट लिए जाते हैं। हाल में यह निर्णय किया गया है कि उपयोग में लाई गई अर्जित छुट्टी के एवज में छुट्टी वेतन से इस प्रकार की कटौती नहीं की जाएगी। अर्धवेतन छुट्टी वेतन से ये कटौतियां बनी रहेंगी।

केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों की अनिवार्य बीमा योजना

प्रत्येक कर्मचारी जो 1-7-1977 को सेवा में लगा हुआ था और इसके बाद सेवा में आने वाले प्रत्येक कर्मचारी को 5 रुपए प्रतिमास अंशदान देना होता है और मृत्यु हो जाने की दशा से 5,000 रुपए की बीमा-राशि उसके उत्तराधिकारियों को मिल जाती है। सेवा-निवृत्ति होने पर उसे जो राशि भुगतान की जाती है, वह राशि उसके अंशदान के बराबर होती है।

ऊपर बताए गए सभी प्रकार के भत्तों में महंगाई भत्तों के प्रति सरकारी कर्मचारियों ने अधिक महत्त्व दिया है लेकिन महंगाई भत्ते का भुगतान मुद्रास्फीति और हमारी विशाल जनता के लिए दारुण दुःख का मुख्य कारण है। तीसरे वेतन आयोग पंचाट के अधीन सरकारी कर्मचारी अपने महंगाई भत्ते के संशोधन के अधिकारी होते हैं जब कभी औसत रूप से 12 महीने की अवधि में उपभोक्ता कीमत सूचकांक आठ प्वाइंट से अधिक हो जाता है। पेंशनरों को सहायता प्राप्ति का अधिकार उसी समय मिल

पाता है जब सूचकांक 16 प्वाइंट तक हो जाता है। सरकारी कर्मचारियों के मामले में स्थिति भिन्न है जबकि प्रत्येक बार इस बारे में उच्चतम स्तर पर निर्णय लेना होता है लेकिन राष्ट्रीयकृत बैंकों में महंगाई भत्ते की दरों में वृद्धि अपने आप ही हो जाती है।

मूलतः महंगाई भत्ता तुलनात्मक रूप से कम वेतन पाने वाले सरकारी कर्मचारियों को भुगतान किया गया था ताकि आवश्यक वस्तुओं की कीमतों की वृद्धि को निष्क्रिय किया जा सके। उस समय यह केवल अस्थायी आवश्यकता थी और स्थायी नीति नहीं थी जो समय के साथ धीरे-धीरे बन चुकी है। जबकि महंगाई भत्ता सरकारी कर्मचारियों के मामले में कीमत वृद्धि को कम कराता है लेकिन इससे आम जनता के लिए कीमतें बढ़ जाती हैं क्योंकि वस्तुओं की आपूर्ति की तुलना से मांग और क्रय शक्ति बढ़ जाती है। कीमतों में वृद्धि परिलब्धियों को बढ़ाती रहती है और परिलब्धियों की वृद्धि कीमतों को और भी अधिक बढ़ा देती है, इस प्रकार यह दुश्चक्र बराबर बढ़ता ही चला जाता है।

यह योजना किस प्रकार ठोस रूप में कार्यान्वित की जाती है, यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि वर्ष 1980 में केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों को 1 मई, 1980 से महंगाई भत्ता की दूसरी किस्त मिली।

1600 रुपए प्रतिमास तक वेतनभोगी कर्मचारियों को महंगाई भत्ता के भुगतान से 1980 में राजकोष को 51.66 करोड़ रुपए का भार वहन करना पड़ा और बाद में प्रतिवर्ष 22 करोड़ रुपए का आवर्ती भुगतान करना पड़ा।

इसके अलावा, उपभोक्ता कीमत सूचकांक में 16 प्वाइंट की वृद्धि के फलस्वरूप केंद्रीय सरकार के पेंशन-भोगियों को गत भुगतान के बाद सहायता की नई किस्त पाने का अधिकार प्राप्त हो गया। इसके अनुसार सहायता रूप में उन्हें अपनी पेंशन का 5 प्रतिशत और अधिकतम 25 रुपए प्रतिमास महंगाई भत्ता मिलने लगा। 1980 में इस सहायता रूप में किस्त के भुगतान से सरकार को 7.66 करोड़ रुपए का भार वहन करना होगा और बाद के वर्ष में 9.20 करोड़ रुपए का भार वहन करना होगा। केवल इतना ही नहीं है; औद्योगिक कामगारों के लिए उपभोक्ता कीमत सूचकांक 12 महीने के औसत से 368 प्वाइंट को पार कर गया है। केंद्रीय सरकारी कर्मचारी गत 1 जुलाई से महंगाई भत्ते की एक अन्य किस्त पाने के अधिकारी हो गए हैं।

अगस्त, 1980 के अंत में कीमत सूचकांक 376 तक बढ़ गया, वर्ष में महंगाई भत्ते की चौथी किस्त दिसंबर के अंतिम सप्ताह में 1 सितंबर से लागू करके भुगतान की गई। नवीनतम निर्णय के अनुसार वर्ष भर में 62 करोड़ रुपए का अतिरिक्त व्यय होगा। 35 लाख से अधिक केंद्रीय सरकारी कर्मचारी महंगाई भत्ते की वृद्धि की पांचवीं किस्त 1 दिसंबर, 1980 से प्राप्त करने के अधिकारी हैं क्योंकि नवंबर में 12 मास के औसत उपभोक्ता कीमत सूचकांक में 386.66 तक वृद्धि हो गई है।

जैसे ही यह पुस्तक प्रकाशन हेतु प्रेस को दी जाएगी, 12 मास के औसत उपभोक्ता कीमत सूचकांक में 8 प्वाइंट की वृद्धि होकर जनवरी में 392.83 प्वाइंट हो जाएगा फिर सरकारी कर्मचारियों को महंगाई भत्ते की दूसरी किस्त देय होगी।

फिर भी दीर्घकालीन उपाय के रूप में वस्तुओं और सेवाओं का अधिकाधिक उत्पादन किया जाना चाहिए और इस कार्य में सरकार को लगना चाहिए, बजाय इसके कि नियमित रूप से महंगाई भत्ता का भुगतान किया जाता रहे जैसा कि गत तीस वर्षों या इससे अधिक समय से महंगाई भत्ते का भुगतान किया जाता रहा है। महंगाई भत्ता के भुगतान की अपेक्षा हमें ऐसी नीति बनानी चाहिए कि हम पंचवर्षीय मजदूरी या वेतन का संशोधन करते रहें ताकि मजदूरी या वेतन राष्ट्र की भौतिक संपत्ति के स्थान पर वास्तविक आय की वृद्धि के समानुपातिक रहे।

हमारे देश में सरकारी कर्मचारियों को समयोपरि भत्ते का भुगतान एक दूसरी बड़ी भूल है जिसे क्षमा नहीं किया जा सकता। हमारे देश में अधिकांश सरकारी कर्मचारी निर्धारित घंटों में अपना कार्य निष्ठा से पूरा नहीं करते। यह पद्धति केवल ऐसे ही नेतृत्व से उभरी है जो कल्पनाशील नहीं है अथवा हमारी आर्थिक स्थिति की वास्तविकताओं से अवगत नहीं है। लोग वास्तव में इस भावना को स्वीकार कर लेते हैं कि सरकारी कर्मचारी अपनी उपस्थिति के लिए अपने वेतन प्राप्त करते हैं और काम के लिए समयोपरि भत्ता मांगते हैं।

दो उदाहरण दिए जाते हैं: 1980 में 900 लाख रुपए का समयोपरि भत्ता दिया गया, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया 28 सार्वजनिक क्षेत्रक के बैंकों में अग्रणी था और उसने उस वर्ष में समयोपरि भत्ते के रूप में अपने कर्मचारियों को कुल 3084.86 लाख रुपए भुगतान किए। इसके बाद बैंक ऑफ इंडिया ने 326 लाख रुपए तथा बैंक ऑफ बड़ौदा ने 300 लाख रुपए भुगतान किए।

27 फरवरी, 1981 को लोकसभा में संसद सदस्य श्री जनार्दन पुजारी के प्रश्न के उत्तर में उप-वित्त मंत्री श्री मगनभाई बड़ोत ने यह बताया कि अन्य पांच बैंक भी हैं जिन्होंने समयोपरि भत्ते के रूप में एक करोड़ रुपए से अधिक राशि का भुगतान किया है। अन्य बीस बैंक ऐसे भी हैं जिन्होंने 1.88 लाख रुपए और 95 लाख रुपए के बीच की राशियों के भुगतान किए हैं।

25 मार्च, 1981 को लोकसभा में एक अन्य प्रश्न के उत्तर में राज्य गृहमंत्री श्री पी० वैंकट सुबय्या ने कृपापूर्वक यह सूचना दी कि तीन वित्तीय वर्षों अर्थात् 1977-80 के मध्य समयोपरि भत्ता रेलवे और सिविल डिफेंस कर्मचारियों को क्रमः 58.9 करोड़ रुपए और 48.2 करोड़ रुपए भुगतान किया गया है।

यहां इस बात का उल्लेख करना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि अब सरकारी

कर्मचारियों ने भी औद्योगिक कामगारों के समान बोनस के भुगतान की मांग की है। बोनस की मूल संकल्पना का आधार औद्योगिक कामगारों को अनुग्रह रूप में भुगतान अथवा लाभ में साझेदारी के रूप में भुगतान था। लेकिन किसी नियोक्ता द्वारा प्रदत्त स्वैच्छिक उपहार से धीरे-धीरे बढ़कर यह औद्योगिक कर्मचारी का आस्थगित मजदूरी का कानूनी अधिकार या तेरहवें महीने का वेतन हो गया है। लोकदल सरकार के अंतरिम शासन काल में (अगस्त, 1979 से दिसंबर, 1979 तक) रेलवे कामगारों ने बोनस के अधिकार (जो उत्पादकता के साथ संबद्ध था) को देशव्यापी हड़ताल की धमकी देकर ले लिया और इस प्रकार देश के समस्त आर्थिक जीवन को रोकने का प्रयास किया। इसके बाद कांग्रेस (इ) सरकार ने भी शासन में आते ही शीघ्र डाक और तार विभाग के कर्मचारियों की बोनस मांग को स्वीकार कर लिया। वास्तव में उनकी मांगें न्यायसंगत नहीं थीं और साधारण परिस्थितियों में इन मांगों को सीधा ही ठुकरा देना चाहिए था।

लेकिन उन हित-लाभों और सुविधाओं का कोई अंत नहीं है जिन पर सरकारी कर्मचारी सोचते हैं कि उनका अधिकार है और सरकार दिन-प्रतिदिन उन्हें दिए चली जा रही है। अभी हाल ही के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

(i) 1979-80 में संघीय गृह मंत्रालय के अधिकारी वर्ग और प्रशासकीय सुधार विभाग की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों के कल्याण के साधन बढ़ाए गए हैं : (क) परिवार पेंशन दिए जाने के लिए नियमों को अधिक उदार बनाया गया है और यह शर्त हटा दी गई है कि मृतक सरकारी कर्मचारी ने एक वर्ष की सेवा पूरी की हो; (ख) सरकारी कर्मचारियों को यह विकल्प दिया गया है कि वे अंशदायी निधि के लाभों की अपेक्षा पेंशन की योजना को स्वीकार कर लें, स्लेव-पद्धति को प्रारंभ किया गया है और पेंशन-सूत्र को उदार किया गया है; और (ग) वर्ष भर में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं जिनमें चपरासियों की भर्ती का अवरोध उठा लिया गया है और दैनिक मजदूरी के आधार पर रखे गए आकस्मिक कर्मचारियों की सेवाएं नियमित की जाने लगी हैं।

(ii) केरल सरकार ने अभी हाल ही में एक योजना अनुमोदित की है जिसके अनुसार राज्य के सभी कर्मचारियों अर्थात् सचिव से लेकर चपरासियों को 500 रुपए से लेकर 3,000 रुपए तक नकद पुरस्कार पाने का अधिकार होगा। इन पुरस्कारों का औचित्य सरकारी राजस्व में वृद्धि के लिए कर्मचारी के अंशदान पर निर्भर होगा अथवा खर्च कम किया जाएगा अथवा विभिन्न योजनाओं के संबंध में विशिष्ट कर्तव्यों के पालन करने से होगा।

उस कार्य-निष्पादन पर विचार किया जाना था जिसके लिए केरल सरकार

द्वारा पुरस्कार दिए जाएंगे। यह कार्य-निष्पादन सरकारी नौकरों के सामान्य कर्तव्यों का था। इसके अलावा इन पुरस्कारों को प्राप्त करने के लिए कुछ ऐसी शर्तें हैं कि कर्मचारियों के कतिपय वर्ग ही इन्हें जीत सकेंगे। इस प्रकार की परिस्थिति अन्य वर्गों में अनैतिकता फैलाने के लिए बाध्य होगी। इसके अलावा समयोपरि भत्ते के मामले में भी केरल राज्य की योजना एक ऐसी स्थिति पैदा कर देगी कि यह पुरस्कार वैध कार्य को हतोत्साह करने में सहायक होगा।

हम विदेशी सेवा पर काफी धन व्यय करते हैं। जवाहरलाल नेहरू के समय से एक ऐसा वातावरण पैदा हो गया है कि बाहर के धनी देशों की होड़ में हमारी प्रतिष्ठा इस बात से मापी जाएगी कि हम विदेशी दूतावासों में कितना अधिक खर्च कर लेते हैं। विदेशी राजधानियों के हमारे दूतावासों में आवास, कार्यालय, फर्नीचर और फिटिंग, भोग, परिवहन तथा सभी कुछ वैभवशाली साज-सज्जा की व्यवस्था की जाती है। लगभग पूरी अवधि समाप्त करने के बाद प्रत्येक राजदूत के पास लाखों का धन हो जाता है और उसके स्टाफ के सभी सदस्य वैयक्तिक सहायक से लेकर घरेलू नौकर तक जिसका वेतन आदि सरकार द्वारा भुगतान किया जाता है, धनी हो जाते हैं।

भारतीय विदेशी सेवा के अधिकांश सदस्य अपनी सेवा को एक ऐसा अवसर मानते हैं कि वे सरकारी व्यय पर सारा विश्व देख सकते हैं और अच्छा जीवन बिता सकते हैं। इस निष्कर्ष की आंशिक रूप से इस तथ्य द्वारा पुष्टि होती है कि 1948 और 1979-80 के मध्य 30 वर्षों की अवधि में विदेश मंत्रालय का प्रशासकीय बजट 10 गुना (58 लाख से बढ़कर 580 लाख तक) बढ़ गया है और इसी अवधि में विदेशी मिशनों-पदों का प्रशासकीय बजट 21 गुने से भी अधिक एक करोड़ 60 लाख से बढ़कर 34 करोड़ 69 लाख तक) बढ़ गया है। इंगलैंड, अमरीका, रूस, पाकिस्तान, बंगला देश और श्रीलंका में बड़े-बड़े मिशन बजट की अधिक राशि व्यय कर लेते हैं।

विदेशी सेवा के सदस्यों ने रहन-सहन का जो शानदार फैशन अपनाया है उसकी नकल वे अधिकारी भी करते हैं जो विदेशों में अन्य विभागों द्वारा तैनात किए जाते हैं। यही कारण है कि नौकरशाही तंत्र में इन तैनात अधिकारियों और कर्मचारियों के प्रति काफी ईर्ष्या बढ़ती है और काफी पक्ष-प्रचार किया जाता है—केवल यदि हम यथार्थवादी होते और अपने देश के लोगों के दुःखों को जान पाते तो हम प्रतिवर्ष करोड़ों रुपए बचा लेते।

हमारे देश के कतिपय राजनीतिज्ञ और नौकरशाही तंत्र के अधिकारी भारत की अर्थव्यवस्था को अपने मनोरंजन और लाभों का आधार मानते हैं। हजारों भारतीय अधिकारियों ने काफी समय से समृद्धिशाली जीवन बिताया है और उनका यह वैभवशाली जीवनयापन हमारे देश के असंख्य दीन-दुखियों की कीमत पर पनपा है। यह बात अभी हाल ही में लोगों के ध्यान में आई है। जनता सरकार के अधीन राज्य वित्त-मंत्री श्री सतीशचंद्र अग्रवाल ने 29 जुलाई, 1980 को लोकसभा में वार्षिक बजट के अवसर पर अपने भाषण में इस लूटपाट का भंडाफोड़ किया है। उन्होंने कहा कि 4,000 भारतीय अधिकारी इस समय प्रतिनियुक्ति पर अन्तर्राष्ट्रीय निकायों में सेवा कर रहे

हैं और उन्हें सरकार द्वारा 10 गुना वेतन दिया जाता है। चूंकि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन 5 वर्षों की सेवा के बाद भारी-भरकम पेंशन देते हैं इसलिए अधिकारियों की यह प्रवृत्ति रही है कि उन्हें किसी न किसी प्रकार अपनी प्रतिनियुक्ति अवधि के विस्तार को सुरक्षित कर मिले।

उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि प्रतिनियुक्ति के अधिकारियों को दिए गए वेतन भारतीय दूतावास मिशनों में जमा कर देने चाहिए और उन अधिकारियों को उतने ही धन के निकालने की अनुमति देनी चाहिए जो उन्हें उस स्थिति में भुगतान किया जाता यदि वे सरकार द्वारा विदेश में तैनात किए जाते। उन्होंने यह भी प्रस्ताव किया कि ऐसे अधिकारियों को जो पेंशनें प्राप्त होती है उस पर आयकर लगानी चाहिए।

उनके मत में भारत आसानी से विदेशी सहायता को समाप्त कर सकता है यदि कर की बकाया राशियों के 10 प्रतिशत को वसूल कर लिया जाय और सार्वजनिक क्षेत्रक के लाभ हैं 10 प्रतिशत की वृद्धि की जा सकती है तथा सरकारी खर्चे में भी 10 प्रतिशत की कमी की जा सकती है।

आर्थर सेल्डन[2] के अनुसार इंगलैंड में लोकमत भी विरोधी हो गया है जैसाकि कि यह कभी नहीं था—और आगामी दस वर्षों में और अधिक विरोधी हो जाएगा—नौकरशाही तंत्र के अधिकारियों के उच्च वेतन के लिए विरोधी नहीं होंगे बल्कि नौकरशाही तंत्र के अधिकारियों की अधिक संख्या के प्रति विरोधी होंगे। जब कभी कोई समस्या—सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक—पैदा होती है, एक नया विभाग, प्राधिकार, बोर्ड, आयोग, समिति या पैनल आदि बना लिए जाते थे जिनमें कई प्रकार के प्रशिक्षित प्रशासक, व्यवसायी, क्लर्क, द्वारपाल आदि को रख लिया जाता था ताकि समस्याओं के समाधान हो सकें। सरकार अभी तक आधा या इससे अधिक काम कर लेती थी लेकिन इस नई पद्धति से बिल्कुल भी काम नहीं हो पाता था।

उन्होंने अपने लेख का निष्कर्ष इन शब्दों में दिया है :

> यदि नौकरशाही तंत्र के अधिकारियों ने मंत्रियों को परामर्श दिया कि कहां कटौतियां की जा सकती हैं या उन्हीं को कटौतियां करने के लिए स्वतंत्र कर दिया जाय, तो हमें यह आशा करनी चाहिए कि वे उन्हीं में कटौतियां करेंगे जो उनके लिए अनुकूल होंगी लेकिन जनता के लिए अनुकूल नहीं होंगी। अब इस संबंध में क्या किया जा सकता है? नौकरशाही तंत्र के अधिकारियों को खरीदना अधिक व्यय-साध्य है। यदि युवकों और गतिशील व्यक्तियों को स्थानांतरित किया जाय तो वृद्ध बेकार हो जाते हैं और अधिक

2. देखिए, 'डेली टेलीग्राफ', लंदन में 5 अक्टूबर, 1979 को प्रकाशित लेख—"फ़ेज आउट द सिविल सर्वेन्ट्स।"

अनुकूल नहीं हो पाते। वृद्ध व्यक्तियों को सेवा-निवृत्ति की प्रतीक्षा अधिक करनी पड़ती है।

इसका केवल समाधान बड़े पैमाने पर काम करना है, धीरे-धीरे कम करने की पद्धति से काम नहीं चलेगा, काम को ठेके पर कराना है, भीड़भाड़ को कम करना है और विकेन्द्रीकरण करना है।

सरकारी कर्मचारी अपने कार्यालय के कार्य में कितना समय लगाते हैं, इस संबंध में मूल्यांकन और अनुमान लगाने के लिए एक अध्ययन कराया गया जिसके अनुसार निचले स्तर पर वर्तमान् सरकारी कर्मचारियों में से 1/3 भाग के कर्मचारी दक्षता में कमी आए बिना सरकारी सेवा को निभा पाते हैं।

अभी भी राष्ट्र के विरल वित्तीय संसाधनों की बर्बादी का दूसरा प्रचुर स्रोत अर्थात् सार्वजनिक क्षेत्र का कुप्रबंध है। औद्योगिक नीति संकल्प, 1956 के अनुसरण में भारत सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्रक में बड़े अथवा भारी उद्योगों की स्थापना का निर्णय किया है और बाद में कतिपय वर्तमान निजी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का निर्णय किया है। परंतु 1971-72 तक सार्वजनिक क्षेत्रक के निगम वाले प्रतिवर्ष काफी हानि दिखाते रहे। इन निगमों ने वर्तमान निवेश संसाधनों के काफी बड़े भाग का विनियोग किया था और इनमें पहली पंचवर्षीय योजना, 1951 के प्रारंभ से 29 करोड़ रुपए का निवेश बढ़कर मार्च, 1972 तक 5,052 करोड़ रुपए हो गया। तालिका 135 में बाद के वर्षों के आंकड़े दिखाए गए हैं :

तालिका 135

सार्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रमों में निवेश और लाभ

वर्ष	निवेश (करोड़ों रुपयों में)	निवल लाभ करोड़ रुपयों में)	निवेश की प्रतिशतता
1972-73	5052	18	0.36
1973-74	6237	64	1.03
1974-75	7261	184	2.5
1975-76	8973	129	1.4
1976-77	11097	184	1.7
1977-78	12851	(—) 91	(—)0.74
1978-79	15602	(—) 32	(–)0.20

इस प्रकार लोगों की सबसे अधिक दर 1974-75 में हुई अर्थात् 2.5 प्रतिशत जबकि वित्त संचालक द्वारा निर्धारित मानक के अनुसार एक व्यापारिक

कंपनी को मोटे तौर पर 10 और 15 प्रतिशत के बीच लाभांश का भुगतान करना था और वस्तुओं के निर्माण करने वाली फर्म को 6 से 12 प्रतिशत के बीच लाभांश का भुगतान करना था।

चूंकि चालू निवेश संसाधनों के 60 से 65 प्रतिशत संसाधन सार्वजनिक क्षेत्रक में लगा दिए जाते हैं अतः इसके परिणामस्वरूप देश के विकास में भारी हानि हो जाती है। सार्वजनिक क्षेत्रक ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे वे राष्ट्रीय बचतों और विदेशी सहायता को संभालने के लिए बेपेंदी के बर्तन हों। जब तक इन संसाधनों के बहने को रोका नहीं जायेगा तब तक क्या हम कृषि को अपेक्षाकृत अधिक अच्छा व्यवहार देने की आशा कर सकते हैं और क्या निवेश की वृद्धि के अनुकूल आर्थिक विकास में कुल मिलाकर तीव्र गति ला सकते हैं?

उदाहरणार्थ, राज्य बिजली बोर्ड हमारे सरकारी राजकोष के लिए विशाल निर्गम हैं। 18 राज्य बिजली बोर्ड हैं और वे सभी हानि उठाकर चल रहे हैं। वर्ष 1978-79 में कुल हानि 276 करोड़ रुपए की और 1979-80 में 385 करोड़ रुपए की हानि का अनुमान लगाया गया था। 1978 से 1983 तक कुल हानि का अनुमान 2,523 करोड़ रुपए का है।

देश में 2 लाख से अधिक बैंक अधिकारियों ने अभी हाल ही में यह दोषारोपण किया है कि "सार्वजनिक क्षेत्रक बैंकों की वर्तमान संरचना व्यर्थता से परिपूर्ण है और बैंकिंग के कार्यों के चलाने में भ्रष्टता को उकसाती है" और यह मांग की कि 28 बैंकों की ऐसी संरचना की जाय कि बराबर-बराबर आठ या दस बैंक बना दिए जायं और उनके मुख्यालयों को राज्य की राजधानियों में रखा जाय।

श्री एल० वी० सुब्रमनियम सेक्रेटरी जनरल, ऑल इंडिया कॉनफेडरेशन ऑफ बैंक ऑफिसर्स एसोसिएशन ने संघीय वित्तीय मंत्री श्री आर० वैंकट रमन को अभी हाल ही में लिखे पत्र में यह दावा किया है कि इस प्रकार बैंकों के पुनर्गठन से स्टाफ, किराये और बैंकिंग पद्धति के अन्य व्यय में 'कम से कम 50 करोड़ रुपए' की बचत हो जाएगी।

ऑफिसर्स एसोसिएशन ने यह कहा कि "बैंकों द्वारा संसाधनों की गतिशीलता सीमांत रही है।" वास्तव में बैंकों ने कतिपय स्थानों पर जो कुछ किया है वह केवल एक-दूसरे की 'जमा राशियों' को घसीटना है और इसमें "गतिशीलता के कुल प्रयत्नों के बावजूद किसी प्रकार का कोई योगदान नहीं हुआ है।"

सार्वजनिक क्षेत्रक के उद्यमों में किए गए निवेशों के कम लाभों का एक मुख्य कारण यह है कि इन उद्यमों के कर्मचारियों को अधिक वेतन और अन्य परिलब्धियां दी गई हैं। तालिका 136 में यह दिखाया गया है कि इन उद्यमों के एक कर्मचारी को दी जाने वाली औसत उपलब्धियां वर्ष 1978-79 में प्रतिवर्ष 11,033.3 रुपए थीं जबकि इस वर्ष देश में प्रति व्यक्ति आय 1249.5 रुपए रही। इन दोनों आंकड़ों का अनुपात 9:1 है। इस प्रकार की असमानता एक निजी व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति के बीच समझी जा सकती है, लेकिन एक ओर लगभग उन बीस

लाख व्यक्तियों के दल की आय के मध्य यह असमानता है जो वास्तव में विश्व के सबसे गरीब देश भारत में 'समाजवादी' सरकार में सेवा कर रहे हैं; दूसरी ओर शेष जनता के बारे में निश्चय ही समझा नहीं जा सकता।

सार्वजनिक उद्यमों के ब्यूरो से 1979-80 की रिपोर्ट में केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्रक के अलग-अलग उद्यमों के कर्मचारियों की कुल संख्या, उनके वेतनों पर पूंजी जिसमें 1977-78 और 1978-79 के वर्षों में दिए गए नकद लाभ और बोनस दिखाए गए हैं, उनका विवरण निम्नांकित तालिका में किया गया है :

तालिका 136

क्रम संख्या	उद्यम ग्रुप	रोजगार प्राप्त लोगों की संख्या		वेतन और मजदूरी और बोनस सहित अन्य लाभ(लाखों में)	
		1977-78	1978-79	1977-78	1978-79
1	2	3	4	5	6
1.	निर्माणाधीन उद्यम	6026	20493	500	527
2.	इस्पात	214736	210923	26135	27262
3.	खनिज और धातुएं कोयले के अतिरिक्त	81810	98917**	5760	7500
4.	पैट्रोल	55290	56741	9493	9944
5.	रसायन और औषधियां	62494	64227	7165	7335
6.	भारी इंजीनियरिंग	127009	135430	14234	17055
7.	मध्यम और हल्की इंजीनियरिंग	92718	97535	10482	12689
8.	परिवहन साज-सामान	93689	94271	10472	11507
9.	उपभोक्ता-वस्तुएं	15081	16170	1201	1409
10.	कृषि आधारित उद्यम	7458	6363	411	422
11.	व्यापारिक और विपणन सेवाएं	85709	91398	7150	8573
12.	संविदा और निर्माण सेवाएं	45485	43194	3504	5780
13.	वाहन-सेवाएं	44093	47299	8852	15391
14.	औद्योगिक विकास और तकनीकी परामर्श सेवाएं	10190	14505	1876	3180

(क्रमश)

1	2	3	4	5	6
15.	लघु उद्योगों का विकास	3024*	2092	262	79
16.	पर्यटक सेवाएं	7643	8248	666	841
17.	वित्तीय सेवाएं	863	980	107	209
18.	बीमा निगम	82949	89368	13815	15999
19.	सेक्शन 25 कंपनी	698	726	81	127
20.	कोल इंडिया	598055	589707	42385	47035
21.	टैक्सटाइल	अनुपलब्ध	16189	अनुपलब्ध	11853
22.	दिल्ली परिवहन निगम	अनुपलब्ध	21442	अनुपलब्ध	1670
	कुल जोड़	1638020	1870572	164551	206387

स्रोत : सार्वजनिक उद्यम सर्वेक्षण (पब्लिक एंटरप्राइजर्स सर्वे), 1978-79, खंड I, पृष्ठ 213.

* वर्ष 1977-78 के लिए एन० टी० सी० के आंकड़े शामिल किए गए हैं।

** वर्ष 1978-79 के लिए एन० टी० सी० के आंकड़े शामिल किए गए हैं।

यह पारंपरिक विचार है कि अहस्तक्षेप पूंजीवादियों ने कार्यशील वर्ग के लोगों का शोषण किया है और यह स्थिति भारत के लिए कभी भी हितकर नहीं है। संगठित क्षेत्रक में कामगार, चाहे वे उदास हों अथवा प्रसन्न हों, मजदूरी पैदा करने वालों में से विशिष्ट अभिजात वर्ग उभर आया है। सार्वजनिक क्षेत्रक के कर्मचारी उस अभिजात वर्ग में युवराज हैं जिन्हें ऊंची मजदूरी और सभी प्रकार की पूर्वापेक्षाएं मिल जाती हैं। अब सरकार के लिए समय है कि ठोस कदम उठाए और उसके अधीन जो निगम हैं, उनके कार्यकर्त्ताओं की मजदूरी की संरचना का मानकीकरण कर दे। यह कार्य औद्योगिक संबंधों की नीति में न्यायसंगत होगा।

सार्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रम भारत भर में फैले हुए हैं लेकिन उनके लगभग सभी चीफ एक्जीक्यूटिव उन उद्यमों से अलग रहना पसंद करते हैं तथा बड़े-बड़े शहरों में वैभवपूर्ण ढंग से सजे हुए कार्यालयों में रहते हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें वे सुविधाएं नहीं मिल पातीं जो बड़े शहरों में उपलब्ध होती हैं; उदाहरणार्थ वे अपने बच्चों के लिए अंग्रेजी माध्यम से उन स्थानों में शिक्षा नहीं दिला पाते जहां उद्यम स्थित हैं।

ये चीफ एक्जीक्यूटिव अधिकांशतया दिल्ली, कलकत्ता, बंबई और मद्रास जैसे शहरों में अधिकाधिक किराए पर भवन लेकर रहते हैं और इन विशाल भवनों में न केवल उनके कार्यालय होते हैं बल्कि उनके आवास-स्थान भी होते हैं। इस भवनों को वैभवपूर्ण ढंग से सजाने के अलावा केंद्रीय प्रशीतन (सेंट्रल एअरकंडीशनिंग) की सुविधाएं भी जुटाई जाती हैं। इन भवनों को सरकारी राजकोष से सुसज्जित किया जाता है और इनका रख-रखाव किया जाता है। आंकड़ों से यह पता चलता है कि

दिल्ली में प्रत्येक उपक्रम के लिए लाखों रुपए किराए में दे दिए जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति इन कार्यालयों में आगंतुक है और वह इन कार्यालयों को देखने के लिए जाता है, तो उसकी पहली प्रतिक्रिया यह होगी कि उसे किसी अन्य विश्व में लाकर खड़ा कर दिया गया है।

इसके अलावा सभी शहरों में वैभवपूर्ण साज-सामान से अतिथि-गृह और हिल स्टेशनों पर 'होलीडे' होम रखे जाते हैं जैसे भूतपूर्व रजवाड़ों के महाराजाओं या शासकों के महल हुआ करते थे।

मुक्त भाव से मोटर गाड़ियों के उपयोग की कोई सीमा नहीं है और निःशुल्क चिकित्सीय उपचार के अधिकार का प्रयोग करने में कोई अवरोध नहीं है। (चिकित्सीय उपचार के नाम पर डॉक्टरों और केमिस्टों के सहयोग से धन कमाया जाता है क्योंकि चीफ एग्जीक्यूटिव ही डॉक्टरों और केमिस्टों की नियुक्ति करते हैं।) इस बात के काफी उदाहरण हैं कि दिल्ली और बड़े-बड़े शहरों में चीफ एग्जीक्यूटिव के साथ काम करने वाले लोग कहीं अधिक धन कमा लेते हैं जबकि उन्हें उतना वेतन नहीं मिल पाता।

इन एग्जीक्यूटिवों के अपने कार्य-स्थल से दूर रहने का एक अन्य कारण यह भी है कि वे अपने कार्य-स्थल तथा अन्य स्थानों तक जाने के लिए साप्ताहिक और पाक्षिक वायुयान की यात्राएं करके काफी धन कमा लेते हैं।

परंतु देश का दुर्भाग्य यह है कि कुल मिलाकर सार्वजनिक उद्यमों को भारी हानियां उठानी पड़ रही हैं और इस तथ्य के बावजूद किसी को भी इसकी चिंता नहीं है अथवा यह देखने के लिए कोई भी तैयार नहीं है कि ऐसा क्यों होता है?

आगे कुछ ऐसे तथ्य दिए गए हैं जिनसे यह विदित होता है कि सार्वजनिक उपक्रमों के प्रबंध में लोग सार्वजनिक हित के नाम पर अपना किस प्रकार जीवन बिताते हैं। यह स्थिति इस विषय पर लोक सभा में प्रस्तुत की गई रिपोर्ट से विदित होती है।

> "समिति उस असाधारण अपव्ययी ढंग को देखकर आश्चर्यचकित है जिससे कतिपय सार्वजनिक उपक्रमों ने अनुत्पादक वस्तुओं पर सार्वजनिक धन उड़ाया है ताकि वे अपने शीर्ष प्रबंधकर्त्ताओं को वैभवपूर्ण वातावरण उपलब्ध करा सकें।"
>
> [सार्वजनिक उपक्रमों की समिति (सी० पी० यू०) संख्या 348, पृष्ठ 8]
>
> "समिति को यह देखकर भी आश्चर्य हुआ कि 1976-77 में 50 सार्वजनिक उपक्रमों, जिनके विवरण दिए गए हैं, में से 7 सार्वजनिक उपक्रम ऐसे थे जिनके पास 66 अतिथि-गृह थे और इन 50 उपक्रमों में रखे गए अतिथि-गृहों की संख्या 133 थी।"
>
> [सार्वजनिक उपक्रमों की समिति (सी० पी० यू०), संख्या 342, पृष्ठ 28]

समिति ने आगे यह भी कहा :

> "सार्वजनिक उपक्रमों के शीर्ष कर्मचारियों के आराम, ऐश्वर्य और

फिजूल खर्चों की चर्चा नगर में चारों ओर हो रही है···।"

[सार्वजनिक उपक्रमों की समिति (सी० पी० यू०), संख्या 342, पृष्ठ 95]

"इसलिए यह देखा जाएगा कि एक नया विशेषाधिकार-प्राप्त वर्ग उभर आया है जो श्वेत वस्त्रधारी शासकों और महाराजाओं के समान आनंद करना चाहता है।"

[सार्वजनिक उपक्रमों की समिति (सी० पी० यू०), संख्या 342, पृष्ठ 9]

समिति के अध्यक्ष ने अपनी भूमिका में इस प्रकार कहा है :

"कई सार्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रमों का प्रबंध तटस्थ, अनैतिक, अविवेकी धन-लोलुप व्यक्ति करते हैं जो उन सार्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रमों के हितों की चिंता न करके केवल अपने ही हितों की सिद्धि में लगे रहते हैं जिनकी सेवा के लिए उनसे आशा की जाती है। भ्रष्ट व्यवहारों के मामले भी दिखाई दिए हैं···।"

[सार्वजनिक उपक्रमों की समिति (सी० पी० यू०), संख्या 236, भूमिका, पृष्ठ 4)

संसद की सार्वजनिक उपक्रमों की समिति ने अपनी नवीं कार्यकारी रिपोर्ट में एअर इंडिया पर इस बात का जोर दिया है कि वह अपने एक्जीक्यूटिवों को अपने घर में नौकर रखने के लिए 225 रुपए प्रति मास भुगतान करने की प्रथा शीघ्र ही समाप्त कर दे। यह अतीत का स्मृति-शेष था और आज की परिस्थितियों में नितांत न्यायसंगत नहीं था जब एअर इंडिया निजी संपत्ति नहीं रही बल्कि एक राष्ट्रीय उपक्रम बन गई है।

फिज़ूल खर्चे के कतिपय उदाहरण

अंत में हम ऐसे फिजूल खर्चों के असंख्य उदाहरणों में से कतिपय उदाहरणों का संदर्भ देना चाहेंगे जो गलत नीति-निर्णयों, अकुशलता, सार्वजनिक हित की अवहेलना अथवा हमारे राजनीतिज्ञों और प्रशासकों की निर्दयता से उभरे हैं। अंततोगत्वा, इनमें से उन कतिपय व्यक्तियों को ही दंड दिया जाता है जो लोक निधियों के फिजूल खर्चों के लिए उत्तरदायी ठहरते हैं :

(i) निर्यात राज-सहायता एक बड़ी कूट योजना है जिसके कारण भारत के सुरक्षित बाजार में सुस्थापित बड़े-बड़े उद्योगों के रिजर्वों को सशक्त किया जाता है और जो पहले ही कई रियायतों का लाभ उठाते हैं—चाहे वे रियायतें वित्तीय या अन्य किसी प्रकार की हों। यदि निर्यात राज-सहायता 1973-74 में 77 करोड़ रुपए से बढ़कर 1979-80 में 354 करोड़ रुपए और 1980-81 में 425 करोड़ रुपए हो गई है। इस राशि में वह वित्तीय राज-सहायता शामिल नहीं है जो उपकर की कमियों आदि द्वारा मिला करती है। इस राज-सहायता का जिस तरीके से दुरुपयोग किया गया है, वह महालेखा परीक्षा नियंत्रक की वर्ष 1976-77 की रिपोर्ट में दिखाया गया है और यह तथ्य ट्रांसमिशन टायर्स तथा एब्जोरबेंट कॉटन के निर्यात के लिए नकद

सहायता के रूप में अंकित है। इसके विश्लेषण से यह पता लगता है कि 1973-74 में राष्ट्र ने निर्यात के मूल्यों में 1 रुपए के स्थान पर 18.55 रुपए व्यय किए हैं और 1978-79 में इतनी ही राशि 8.75 रुपए के निर्यात मूल्य के लिए व्यय की गई है। वर्ष 1966 से 1977 तक कुल नकद सहायता 109.20 करोड़ रुपए रही और लोक-लेखा समिति ने (छठी लोक सभा में) अपनी 108वीं रिपोर्ट में यह बताया कि यह स्थिति दुःखद पाई जाएगी यदि अन्य प्रोत्साहनों का भी हिसाब किया जाय।

इस शताब्दी के नवें दशक में निर्यात नीति के संबंध में टंडन समिति के दो सदस्यों ने दो अति विकृत मामलों का पता लगाया है जिनका संबंध मुलायम स्टील राउंड और पिंडियों में लपेटे हुए गर्म रोल्ड स्टील स्ट्राइप्स के आयात से है।

एक पार्टी 6.60 लाख रुपये की नकद सहायता लेकर भाग गई जबकि उसके निर्यात से विदेशी पूंजी में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई लेकिन 9.10 लाख रुपए की हानि हुई।

एक अन्य मामले में 4,000 रुपए की विदेशी विनिमय मुद्रा की अल्प वसूली के लिए 1.15 लाख रुपए की वित्तीय सहायता दी गई।

असहमति की टिप्पणी में यह संदेह है कि क्या सरकार प्रशासकीय निर्यात राज-सहायता के लिए उपयुक्त मानकों का अनुसरण करती है। इस टिप्पणी में यह दावा किया गया है कि निर्यात प्रोत्साहन की अनुमानित सरकारी लागत (वास्तविक राशि से अलग राशि) 1978-79 में 625 करोड़ रुपए तक पहुंच गई है जबकि यह राशि 1971-72 में 110.27 करोड़ रुपए थी।

इस टिप्पणी में आगे बताया गया है कि निर्यातकों को सरकार से अन्य कई प्रकार की रियायतें, यथा—कच्चे माल और तैयार वस्तुओं पर राज-सहायता प्राप्त भाड़े के व्यय और पदार्थों की आपूर्ति के लिए आयात अधिकार राज-सहायता मिली है।

"यदि इन सभी वर्गों की सहायता का हिसाब लगाया जाय और जोड़ा जाय तो सरकार को इस प्रश्न का सामना करना पड़ेगा कि क्या निर्यात प्रोत्साहन को जो बड़ा आयाम दिया गया है, उससे अर्थव्यवस्था में निवल लाभ संगत होगा?"—इसका उल्लेख भी टिप्पणी में किया गया है।

समिति ने इस बात का भी अनुमान लगाया कि निर्यात ऋण पर 6 प्रतिशत ब्याज की दर से ब्याज की राशि की वाणिज्यिक बैंकों को हानि हुई है लेकिन रिजर्व बैंक ने 1.5 प्रतिशत तक ही इस राशि को प्रतिसादित किया है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि निर्यात ऋण पर राज-सहायता के लिए सार्वजनिक लागत 4.5 प्रतिशत रही।

इस टिप्पणी में 'विपरीत' स्थिति में डॉ० रांगनेकर और प्रोफेसर अमित भादुड़ी ने यह तर्क दिया कि भारतीय निर्यातकारों को अंतर्राष्ट्रीय बाजार में काफी कम कीमत पर कई वस्तुएं मिली हैं जबकि शासन को अंतर्राष्ट्रीय बाजार में वस्तुएं महंगी मिली हैं। दो चीजों को ही देखा जाय तो भारतीय कोयला और इस्पात विश्व में सबसे सस्ते

रहे हैं। ऐसे मामलों में क्या निर्यात करने वालों को अंतर्राष्ट्रीय दरों पर कीमत लेनी चाहिए। उन्होंने यह पूछा, "यदि यह कीमत नहीं लेनी चाहिए तो क्यों नहीं लेनी चाहिए ?"

अथशेष निकालते समय भारतीय निर्यातकों को श्रम शामिल करते हुए अपने निवेश बहुत ही सस्ते मिले हैं और इसीलिए इस टिप्पणी में यह दलील दी गई कि किसी भी विशेष राज-सहायता के दिए जाने का कोई मामला नहीं था।

(ii) व्यय की एक मद, जिस पर किसी अवरोध के बिना ही वृद्धि होती जा रही है, का संबंध स्टॉफ कारों से है जबकि पेट्रोल का अभाव भी है। इस मद पर किसी प्रकार का कोई अवरोध नहीं है और यह तथ्य दो उदाहरणों से विदित होता है। श्रम मंत्रालय के अधीन एक प्रशिक्षण संस्थान है जो हैदराबाद में स्थित है और जिसे लघु उद्योग प्रसार प्रशिक्षण संस्थान (स्मॉल इंडस्ट्रीज़ एक्सटेंशन ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट) के नाम से पुकारा जाता है। इस संस्थान में केवल 55 अधिकारी हैं लेकिन इस संस्थान में काम आने वाली 2 एम्बेसेडर कारें, 2 लेलैंड बसें, डिलीवरी वैन और एक ऑटो रिक्शा हैं। एम्बेसेडर कारों में मोटे तौर पर प्रति 5 किलोमीटर पर एक लिटर पेट्रोल की खपत दिखाई जाती है। यह विशेष प्रकार की स्थिति भारत सरकार के अन्य कई विभागों की है और विशेष रूप से यह स्थिति सार्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रमों की है। एक उदाहरण ऐसा है जिसके अनुसार एक सार्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रम ने स्टॉफ कारों पर बहुत अधिक व्यय किया है और इस संबंध में विवरण सार्वजनिक उद्यमों की समिति (छठी लोक सभा) की रिपोर्ट में दिए गए हैं। यह स्थिति केंद्रीय अंतर्देशीय जल परिवहन संगठन (सेंट्रल इनलैंड वाटर ट्रांसपोर्ट आर्गेनाइजेशन) की नवीं रिपोर्ट में दिखाई गई है। केंद्रीय संगठन हानि उठाने वाली संस्था है और इस संगठन को कुल मिलाकर 21 करोड़ रुपए से अधिक हानि उठानी पड़ी है और प्रति वर्ष 4 करोड़ रुपए की हानि होती है। यह संगठन स्टॉफ कार के व्यय के रूप में 11 लाख रुपए की राशि उठा देता है ताकि वरिष्ठ अधिकारियों को स्टॉफ कार की सुविधा उपलब्ध कराई जाय। चेयरमैन और मुख्य परामर्शदाता अपनी कारें बिना किसी लागत के इस्तेमाल करते हैं तथा वरिष्ठ अधिकारी जो स्टॉफ कारों को इस्तेमाल करते हैं, वे प्रतिमास 16 रुपए से 50 रुपए तक साधारण व्यय का भुगतान करते हैं।

(iii) अनावश्यक व्यय की दृष्टि से भारतीय पर्यटन विकास निगम लिमिटेड (इंडिया टूरिज़्म डवलपमेंट कारपोरेशन लिमिटेड) का उदाहरण दिया जा सकता है। बिना खेद प्रकट किए हुए अंधाधुंध व्यय किया जा रहा है और व्यय की मदें हैं: 15 फाइव-स्टार होटल, 2 मोटल, 2 समुद्र किनारे स्थित विश्रामालय और अनेक यांत्रिक आवास-गृह तथा रेस्ट्रां। 15 फाइव-स्टार होटलों में से

केवल 5 फाइव-स्टार होटलों को छोड़कर शेष होटलों ने 1975-76 में हानियां बताई हैं। इनमें से अधिकांश होटलों में आवास आरक्षित करने वालों का अनुपात 21 से 47 के बीच रहा। हमारे देश में यह सर्वविदित तथ्य है कि इन फाइव-स्टार होटलों को वास्तविक पर्यटकों की अपेक्षा शीर्ष सरकारी अधिकारियों का अधिक प्रश्रय मिलता है। इन होटलों में 20 करोड़ रुपए की पूंजी लगी हुई है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि क्या वाणिज्यिक ढंग से इन होटलों से वही लाभ मिल पाता है जो उस स्थिति में मिल पाता है यदि ये होटल निजी एजेंसियों द्वारा चलाए जाते।

(iv) दिल्ली विकास प्राधिकरण अपने लिए बहुमंजिले भवन का निर्माण करना चाहता था। मार्च, 1969 में 12,880 वर्गमीटर के क्षेत्रफल में 27 मंजिल के भवन बनवाने के लिए 88.77 लाख रुपए का प्रारंभिक अनुमान स्वीकृत किया गया। यह अनुमान 1969 से 1975 तक 5 बार संशोधित किया गया है ताकि कतिपय वैभवशाली फिटिंग यथा अल्यूमीनियम की खिड़कियों का ग्लेजिंग, तीव्र गति वाले यात्री लिफ्ट, सेंट्रल एअरकंडीशनिंग आदि की व्यवस्था की जाय। नवीनतम संशोधित अनुमान 3.44 करोड़ रुपए का है जबकि मूल अनुमान 88.77 लाख रुपए था। यह एक ऐसा उदाहरण है कि हमारे जैसे गरीब देश में सरकारी एजेंसी नक्काशीदार अल्यूमीनियम की खिड़कियां, सेंट्रल एअर-कंडीशनिंग को आवश्यक मानती है जबकि हमारे देश में लाखों लोगों के लिए रहने भर की जगह नहीं है और इस वैभवशाली भवन के लिए अनुमान को लगभग 385 प्रतिशत तक ऊंचा करा लिया गया है।

(v) पुनर्वास विभाग ने बहुत पहले 1960 में दंडकारण्य परियोजना के मास्टर प्लान की सिफारिश की थी लेकिन 18 वर्षों के बीत जाने पर भी इस परियोजना को अंतिम रूप नहीं दिया गया। पुनर्वास मंत्रालय ने इस परियोजना पर लगभग 100 करोड़ रुपए व्यय कर दिये हैं और इस व्यय में से केवल 23 करोड़ रुपए प्रशासन पर ही व्यय किए गए हैं। अभी हाल ही में पुनर्वास मंत्रालय के सचिव श्री बी० सी० माथुर ने लोक व्यय आयोग के समक्ष यह तथ्य उद्घाटित किया है कि इस परियोजना में कई अधिकारी और कर्मचारी ऐसे हैं जिनकी देखभाल शरणार्थियों के रूप में की जाती है।

(vi) हमारी निर्माण परियोजनाओं के कई ऐसे उदाहरण हैं जिनसे फिजूल खर्चे का पता लगता है। एक दिपदिपाता उदाहरण लोक जल विद्युत परियोजना का है जो 1970 में प्रारंभ की गई थी और प्रारंभ में ही यह निर्णय किया गया था कि इस परियोजना को 1974 तक पूरा कर लिया जायेगा। संशोधित अनुमानों के अनुसार इस परियोजना को दिसंबर 1980 तक पूरा किया जाना था। प्रारंभ में इस परियोजना की लागत का अनुमान 10.90 करोड़ रुपए था और इस परियोजना के अनुमान का संशोधन 1976 में किया गया जिसके अनु-

सार लागत का अनुमान 76.31 करोड़ रुपए हो गया । इस शताब्दी के आठवें दशक में परियोजनाओं की पूंजी लागतों में तेजी से वृद्धि हो गई जिससे अधिकांश औद्योगिक परियोजनाएं उत्तरोत्तर अव्यावहारिक होती गईं जैसा कि आर्थिक और सामाजिक शोध फाउंडेशन द्वारा 200 से अधिक औद्योगिक परियोजनाओं का अध्ययन करने से विदित हुआ है । इस अध्ययन से इस शताब्दी के नवें दशक में निवेश की कमी होने की आशंका की जाती है यदि परियोजना की व्यावहारिकता के गंभीर दोषों को सही नहीं किया गया और कीमतों तथा लागतों के मध्य संतुलन को पुनः प्रतिष्ठापित नहीं किया गया ।

(vii) निर्माण और आवास मंत्रालय ने अक्टूबर 1971 में निर्माण कार्यों में उपयोग के लिए 1,000 टन तक स्टील तार के फेब्रिक्स खरीद लिए । फिर भी यह कुल मिलाकर अधिक अनुमान था और केंद्रीय लोक निर्माण विभाग सितंबर, 1977 तक केवल 192 टन तक उपयोग कर सका और 800 टन से अधिक शेष का उपयोग नहीं हो सका और यह बचा हुआ स्टॉक खुले में पड़े रहने के कारण बराबर क्षतिग्रस्त हो रहा है । इसमें 22.56 लाख रुपए की राशि निहित है ।

स्रोत : सी० ए० जी० (महालेखा परीक्षा नियंत्रक) की 1976-77 की रिपोर्ट ।)

(viii) शोध और विश्लेषण विंग (आर० ए० डब्ल्यू०), नई दिल्ली का मुख्यालय विशाल भवन में स्थित है । यह मुख्यालय 13 करोड़ रुपए की लागत से निर्मित किया गया है जबकि कर्मचारियों की दृष्टि से यह संगठन बहुत छोटा है ।

(ix) अभी हाल ही में भारत सरकार ने इस्लामाबाद (पाकिस्तान) में 6 करोड़ रुपए की लागत पर अपने दूतावास तथा दूतावास के कर्मचारियों और अधिकारियों के लिए आवास निर्माण किए जाने का अनुमोदन दिया है ।

(x) 24 नवम्बर, 1980 के 'स्टेट्समैन', नई दिल्ली की संपादकीय टिप्पणी के अनुसार यह कथन है :

सलाल हाइड्रो-इलेक्ट्रिक परियोजना के बारे में काफी आलोचना है । इस परियोजना को देखने के लिए एक प्रेस पार्टी अभी हाल ही में गई और उस पार्टी ने अपनी रिपोर्ट दी है । इस रिपोर्ट में यह प्रस्ताव किया गया है कि 400 करोड़ रुपए की इस परियोजना को प्रारंभ हुए 10 वर्षों की अवधि बीत गई है लेकिन अभी तक उत्पादन नहीं हुआ है । इंजीनियरों को बड़ी आशा है जो वर्षों की हताशा के बाद इस परियोजना को 'चलाने' का दावा करते हैं और उनका कहना है कि आगामी आठ वर्षों में इस परियोजना का कार्य समाप्त हो जायेगा "यदि सीमेंट, इस्पात और धन की कमी नहीं की गई ।" उन्हें यह विदित होना चाहिए कि इनकी कमी ही नहीं होगी बल्कि आगामी वर्षों में इनकी आपूर्ति और भी कठिन हो जायेगी ।

अभी तक इस परियोजना के एक भाग पर 130 करोड़ रुपया व्यय हो चुका है जबकि व्यय की राशि काफी कम होनी चाहिए थी। $\frac{2}{3}$ भाग की मिट्टी का काम, ड्रिलिंग और पिलाई और 90% कंकरीट बिछाने जैसे तीव्र काम कराने के कारण अधिक लागत की आवश्यकता होगी और अभी तक इस प्रकार के कार्य शेष हैं। इसके बाद अनेक नागरिक निर्माण कार्य प्रारंभ किए जाते हैं। आगामी दस वर्षों बाद बिजली संयंत्र स्थापित किए जाने हैं और इनमें काफी व्यय होगा जबकि मूल परियोजना में इसका अनुमान नहीं लगाया गया है। 1970 से पूर्व चार से पांच वर्षों की अवधि की जांच के बाद ऐसा लगता है कि इस परियोजना के हाइडिल भाग के निर्माण में लगभग 25 वर्ष लग जायेंगे और तभी बिजली पैदा होगी जब कि थर्मल क्षेत्रक में पांच वर्षों की अवधि लगती और इसकी लागत $\frac{1}{3}$ भाग होती।

यह आश्चर्यजनक बात है कि इंजीनियरों ने भी 'भूगर्भीय तथ्यों' की जानकारी में लगभग 10 वर्षों का समय लगाकर प्रारंभ में ही देर कर दी है।

(xi) दिल्ली और बंबई के सरकारी होटलों में से एक-एक होटल में लगभग 150 फुट के घूमने वाले रेस्ट्रां के निर्माण का निर्णय किया गया है : इस प्रकार का एक रेस्ट्रां गुजरात में पहले ही चल रहा है। इन रेस्ट्रां में से प्रत्येक रेस्ट्रां पर 30 लाख रुपए से एक करोड़ रुपए से अधिक राशि की लागत का अनुमान है।

(xii) संघीय मंत्रिमंडल ने अगस्त, 1978 में आयोजित एक बैठक में नई दिल्ली में जनवरी-फरवरी, 1980 में होने वाले यू० एन० आई० डी० ओ० सम्मेलन के संबंध में कई परियोजनाओं की स्वीकृति दी जो इस प्रकार हैं :

(1) भारतीय पर्यटन विकास निगम (आई० टी० डी० सी०) द्वारा विंडसर प्लेस में 300 कमरों वाला 3 स्टार, होटल का निर्माण; 150 कमरों के निर्माण कराके अकबर होटल का विस्तार और 8 करोड़ 75 लाख रुपए की कुल लागत के हिसाब से 100 कमरों का निर्माण कराके अशोक होटल का विस्तार;

(2) निर्माण और आवास मंत्रालय द्वारा 5 करोड़ 3 लाख रुपए की लागत (भूमि की लागत को छोड़कर) से लोधी होटल के समीप 800 कमरों के होस्टल का निर्माण; और

(3) 1 करोड़ 83 लाख रुपए की लागत से विज्ञान भवन का फिर से नवीकरण करना।

ऊपर बताए गए क्रमांक 1 और 2 पर दी गई परियोजनाओं को कार्यान्वित करने का अभिप्राय उन 2,500 प्रतिनिधियों के आवास का प्रबंध करना था जिनके सम्मेलन में भाग लेने की आशा थी क्योंकि दिल्ली के वर्तमान होटलों में स्थान की अधिक कमी थी। इस सम्मेलन के बाद ऊपर बताई गई क्रमसंख्या 2 पर दिया गया होटल निर्माण और आवास मंत्रालय को सौंपना था ताकि केंद्रीय सरकार के अधिकारियों को कमरे आवंटित किए जा सकें।

अब क्या इसे कोई भी हरा सकता है, यह बात समझ में नहीं आती कि इतने अधिक होटलों में प्रतिनिधियों के आवास का प्रबंध क्यों नहीं किया गया जो दिल्ली में हैं और यह सम्मेलन किसी पंडाल या शामियाने में क्यों नहीं आयोजित किया जा सका ? यदि यह संभव नहीं था तो संयुक्त राष्ट्र संघ को यह क्यों नहीं बताया गया कि भारत ऐसे सम्मेलन के आयोजन कराने में असमर्थ है और इस कार्य में पर्याप्त धन खर्च होगा जो ग्रामीण सुधार की ओर लगाया जा सकता था।

(xiii) भारत सरकार ने यह भी निर्णय किया है कि वर्ष 1982 में आयोजित होने वालों खेलों को दिल्ली में संपन्न कराए जो 'एशियाड' के नाम से पुकारे जाते हैं और इन आयोजनों में एशिया के सभी देशों के खिलाड़ी भाग लेंगे।

30 जनवरी, 1948 के 'इंडियन एक्सप्रेस' नई दिल्ली में दिया गया समाचार इस प्रकार है :

एशियाई खेलों की लागत बढ़कर 700 करोड़ तक हो जाएगी जिसमें नए होटल, फ्लाई ओवर, सड़कों, रेल की पटरियों, स्टैडियम और अन्य सुविधाओं को शामिल कर लिया गया है।

सरकार के गुप्त अध्ययन से यह पता लगा है कि शायद ये खेल 1982 से आस्थगित होकर 1983 में आयोजित किए जायेंगे। खेलों के प्रारंभ करने और उनके समापन करने वाले मुख्य स्टैडियम का निर्माण अपने निर्धारित समय से बहुत पीछे चल रहा है।

कुछ शीर्ष लोगों के दिल अधिक खर्चे के कारण दहल उठे हैं। क्योंकि प्रति-दर्शक 1000 रुपए की लागत का औसत है। आयोजकों का अनुमान है कि उन खेलों के उद्‌घाटन समारोह में 70,000 से 80,000 लोग उपस्थित होंगे।

यह संयोग की बात है कि एशिया के खेलों की लागत का अध्ययन पूरा हुआ, उसी समय भारत की रहन-सहन की दशाओं के नवीनतम अध्ययन से यह पता चला कि 35 करोड़ लोगों से अधिक लोग गरीबी रेखा से नीचे अपना जीवन-यापन करते हैं।

यह मान लिया जाय कि जैसा 'इंडियन एक्सप्रेस' ने अनुमान लगाया है, उसके अनुसार भारत में एशियाई खेलों की लागत 50% भी हो जाय तो क्या यह देश इस वैभवपूर्ण अभियान के व्यय भार को उठा सकेगा जब कि भारत प्रति व्यक्ति आय की दर से विश्व में सबसे निर्धन देशों में से काफी नीचे स्तर पर गिना जाता है ? क्या इस राशि को नए सिंचाई साधनों के निर्माण अथवा हमारे देश में जिला परिषद् को अपनी बेटियों और बहिनों के लिए शौचालय आदि की सुविधाएं प्रदान करने अथवा महानगरों में वर्तमान गंदी बस्तियों के सुधार पर व्यय नहीं किया जा सकता ? क्या प्रदर्शनकारी कार्यों पर धन का दुरुपयोग नहीं है जो ऐसे उत्सवों अथवा सम्मेलनों पर किया जाता है जिनसे देश की प्रतिष्ठा-प्राप्ति की बात कही जाती है परंतु इससे कहीं प्रतिष्ठा की

बात यह है कि हम अपनी अर्थव्यवस्था का विकास करें ताकि हमारे देश का कोई भी व्यक्ति बेरोजगार न रहे अथवा खाली पेट भूखा न सोए।

अभी हाल ही में सैकड़ों करोड़ रुपए की लागत से उपग्रह छोड़े गए हैं और अंतरिक्ष में अनेक प्रयोग किए गए हैं। 2 मई, 1981 को नई दिल्ली में आयोजित एक उत्सव का उद्घाटन करते हुए प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इन उपग्रहों पर किए जाने वाले व्यय के औचित्य का समर्थन इस आधार पर किया है कि ये उपग्रह मौसम की दशाओं के बारे में जानकारी देंगे जिससे कृषि-विकास में सहायता मिलेगी। वह यह भी कहने लगीं कि वास्तव में वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी कार्यक्रमों को इस प्रकार बनाया गया है कि इन दोनों से ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के विकास में सहायता मिलेगी। प्रश्न यह उठता है कि क्या आज विकसित देश ऐसे कार्यक्रमों को प्रारंभ कर रहे हैं जिनसे वे अपने लोगों के खाद्यान्न, कपड़ा और आवास के स्थान पर अन्य विकास करें। निश्चित रूप से ऐसा नहीं है। मुख्य कारण यह है कि सरकार विकास की प्रक्रिया से अपरिचित है और उसे यह झक सवार है कि पश्चिम की नकल करके तथाकथित विकास का प्रदर्शन करें।

जनता की उपेक्षा करके विलासप्रिय रहन-सहन

रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया ने इस देश के औद्योगिक उत्पादन की प्रवृत्तियों के बारे में अध्ययन किया है। यह अध्ययन जनवरी 1980 के बैंक बुलेटिन में प्रकाशित किया गया है। इस अध्ययन में इस तथ्य का उद्घाटन किया गया है कि विलासपूर्ण वस्तुओं के निर्माण पर निवेशों में उत्तरोत्तर वृद्धि की गई है। लेकिन इसकी तुलना में, उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योग, यथा—चीनी, चाय, कपास और अन्य वस्तुएं कम हो गई हैं। इस अध्ययन में 1979 की प्रथम छमाई के अंत तक गत $8\frac{1}{2}$ वर्षों में काफी संख्या में औद्योगिक ग्रुप और उद्योग बढ़े हैं।

इस अध्ययन के अनुसार, उपभोक्ता वस्तुओं की वार्षिक संवृद्धि की चक्रवृद्धि दर सबसे कम अर्थात् 3.9% थी जबकि आधारभूत वस्तुओं की वृद्धि दर 6.5 प्रतिशत और पूंजीगत वस्तुओं की 6.2 प्रतिशत थी। सूती धागे जैसी तात्कालिक वस्तुओं के उद्योग में 4 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि हुई है।

इस देश में 10% धनी लोग रहते हैं। इन धनी लोगों का उपभोग बढ़ गया है। इस वृद्धि का पता विलासपूर्ण वस्तुओं की संख्या से स्पष्ट हो जाता है। मादक पेय पदार्थों का सूचकांक 287, सुगंधित द्रव्यों और श्रृंगार प्रसाधनों का सूचकांक 435.3, एयरकंडीशनर्स और रेफ्रीजरेटर्स का सूचकांक 249.7, घड़ियों और दीवाल की घड़ियों का सूचकांक 290.5, वाणिज्यिक और घरेलू साज-सामान का सूचकांक 215.7, बिजली के पंखों का सूचकांक 189.7 था। माध्यमिक वस्तुओं के उद्योगों में सूचकांक 139.1 था, सूती कपड़ों का केवल 121.3 था जबकि मानव निर्मित धागे का सूचकांक 188 था। इसकी तुलना में पूंजी वस्तुओं के उद्योगों में कुल मिलाकर सूचकांक 165.6 था सबसे अधिक सूचकांक रेफ्रीजरेटरों और एयरकंडीशनर्स का था जबकि रेलवे साज-

सामान के लिए 91.1 और भारी मोटर गाड़ियों के लिए 122.6 था।

जैसा कि स्पष्ट है, सरकारी अध्ययन के निष्कर्ष को छोड़ा नहीं जा सकता। यह निष्कर्ष है कि उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योग, यथा— चीनी, चाय, कपास, वनस्पति और कई वस्तुएं जो आम जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं, अपने आधार को अधिक विस्तृत करने में सक्षम नहीं हो सके हैं क्योंकि मांग की कमी है और जो देश की जनता की अपर्याप्त 80 से 85 प्रतिशत क्रय शक्ति के कारण है।

अब यदि हमारे लोग क्रय शक्ति अर्जित कर लें तो सरकार को यह सुनिश्चित करना है कि देश में प्रत्येक व्यक्ति या तो किसी उत्पादक कार्य में लगा दिया जाय अथवा ऐसे रोजगार में लगा दिया जाय जिन सेवाओं की किसी समुदाय की आवश्यकता होती है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, इसके साथ ही साथ, विलासपूर्ण वस्तुओं, साज-सामान अथवा सुविधाओं के विनिर्माण या उनमें निवेश का तब तक निषेध किया जायेगा जब तक देश हमारे लोगों को मूलभूत आवश्यकताओं को उपलब्ध कराने में सक्षम न हो जाय। वित्तीय संसाधनों की शक्ति को देखना है कि संसाधन बचाए गए हैं अथवा उनका उपयोग किया गया है और उन्हें विशेषकर ग्रामीण विकास के लिए लगाया गया है।

इसके विपरीत, यहां तक सार्वजनिक क्षेत्रक के बैंकों को इस बात की अनुमति दे दी गई है कि वे एयरकंडीशनर्स, रेफरीजेरेटरों, वाशिंग मशीनों, दूध तथा आइसक्रीम के भण्डारों, वेक्यूम क्लीनरों, सजावटी लैम्पों, टी० वी० सेटों, कैमरों, टेप रिकार्डरों, फोटोग्राफिक प्रिंटिंग पेपर, सिगरेट-टिश्यू पेपर, चॉकलेट, कन्फेक्शनरी, सॉस, ग्लेज्ड टाइलों, शृंगार प्रसाधनों, एयरकंडीशंड छातों, बाल सुखाने वाली मशीनों, उम्दा प्रकार के छुरी-कांटे, लेमिनेटड चादरें और वाणिज्यिक तथा अलंकृत प्लाईवुड के निर्माण के लिए ऋण देंगे।

ऊपर दी गई सूची में 'फाइव-स्टार' होटलों और गगनचुंबी भवनों के निर्माण, महंगी मोटर गाड़ियों, मद्य निर्माणशालाओं तथा शराब की भट्ठियों, नृत्यशालाओं, मनोरंजन के लिए तैयार किए गए कीमती अतिरिक्त इलेक्ट्रोनिक उद्योगों, फैंसी पैकिंग में फैंसी दवाइयों, 20 प्रकार के अलग-अलग टूथपेस्टों, केश-तेल और इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं के निर्माण शामिल किए गए हैं।

गत वर्षों में यह स्पष्ट हो गया है कि भारत सरकार शनैः-शनैः उस सबसे उत्तेजक माध्यम की बहुत ही आकर्षित करने वाली संभावनाओं से वशीभूत हो गई है जब विश्व में टेलीविजन की खोज की गई थी अथवा 50 वर्ष पूर्व टेलीविजन का आविष्कार किया था अर्थात् वीडियो कैसिट रिकार्डर के प्रति अधिक आकर्षण है। वीडियो कैसिट रिकार्डर आवाज और तस्वीर दोनों को ही एक कैसिट पर रिकार्ड करने की क्षमता रखता है और इस कैसिट का टेप उतना ही लंबा होता है जितना टेप रिकार्डरों का टेप होता है। यह टी० वी० सेट से अलग हटकर टी० वी० प्रोग्राम को भी रिकार्ड कर लेता है लेकिन टेप को चलाने और प्रोग्राम को देखने के लिए इसे टी० वी० सेट के साथ जोड़ दिया जाता है क्योंकि वीडियो कैसिट रिकार्डर के पास पिक्चर

ट्यूब और स्क्रीन नहीं होती। कैसिट पर रिकार्ड किए गए प्रोग्राम मिटाए जा सकते हैं और नए प्रोग्राम रिकार्ड किए जा सकते हैं। इस प्रकार कैसिट का बार-बार उपयोग किया जा सकता है।

यदि आप टी०वी० पर रात में देर से प्रोग्राम देखना चाहते हैं और आपको नींद आ रही है तो वीडियो कैसिट रिकार्डर आपकी सहायता कर देगा। यह वीडियो कैसिट रिकार्डर आप के लिए कैसिट पर प्रोग्राम रिकार्ड कर देगा और अपने आप ही उस समय बंद हो जायेगा जब रिकार्डिंग पूरी हो जायेगी।

यद्यपि टी० वी० ने पश्चिमी देशों में फिल्मों की लोकप्रियता कम कर दी है, वीडियो कैसिट रिकार्डर सिनेमा हाउसों के बने रहने की स्थिति को भी झकझोरने वाला है। अब यह आवश्यक नहीं है किसी फिल्म को देखने के लिए सिनेमाघर जाया जाए। आप किसी भी लाइब्रेरी से किराये पर अपनी मनपसंद फिल्म का पूर्वरिकार्ड किया गया कैसिट ले लें और उस फिल्म को अपने घर के आरामदायक वातावरण में वीडियो कैसिट रिकार्डर की सहायता से अपने टी० वी० सेट पर ही देख लें। आप किसी दृश्य-विशेष को बार-बार भी देख सकते हैं।

भूतपूर्व सूचना और प्रसारण मंत्री श्री लाल कृष्ण अडवानी ने 12 मार्च, 1979 को यह अभियान प्रारंभ किया और उन्होंने उस दिन भारत की प्रथम वीडियो रिकार्डिंग यूनिट का उद्घाटन किया और उस समय मस्तिष्क में इसके निर्यात-बाजार भी बनाना था। उन्होंने बम्बई स्थित एस्क्वायर वीडियो फिल्म सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड के सीप्ज़ (एस० ई० ई० पी० जैड०) के उद्घाटन समारोह में कहा, "भारतफिल्म उत्पादन में विश्व में अग्रणी है परन्तु भारत पश्चिम देशों की फिल्मों की मांग को पूरी तरह नहीं समझ सका है…यह यूनिट इस मांग की पूर्ति कराने में सहायक सिद्ध होगी और अपने देश के लिए बहुमूल्य विदेशी मुद्र अर्जित कर सकेगी।"

उस समय से वीडियो के आयात के संबंध में सरकार का दृष्टिकोण बदल गया है। 1 अप्रैल, 1980 को वीडियो कैसिट रिकार्डर के आयात पर लगे निषेध को हटा दिया गया 18 जून को संघीय सरकार ने वीडियो कैसिट रिकार्डरों के निर्माण के लिए भारत की 15 यूनिटों से अधिक यूनिटों को स्वीकृति प्रदान कर दी; इसके कुछ सप्ताह बाद वेस्टर्न इलेक्ट्रोनिक्स ने बाजार में वीडियो यूनिट बेचना शुरु कर दिया और यह कम्पनी जापानीज मेत्सुशिता (नेशनल पेरासोनिक) के सहयोग से लगभग 55,000 रुपए में वीडियो कैसिट रिकार्डर का निर्माण करने लगी।

बंबई शहर में पहले ही लगभग 10,000 वीडियो सेट हैं। इससे यह स्पष्ट है कि अब इस प्रकार के सैट रखने का चलन होता जा रहा है। अब इन सैटों ने एक नवीन संस्कृति को जन्म दिया है जो वीडियो सर्किट की संस्कृति कहलाती है। इस शहर में प्रतिष्ठा का नवीनतम मापदण्ड अंतिम 'टैंगो इन पेरिस' अथवा 'क्रैमर वर्सेज क्रैमर' की मूल रिकार्डिंग हैं।

शहरी क्षेत्रों के प्रबुद्ध वर्ग के लोगों के लिए विलासपूर्ण वस्तुओं की व्यवस्था तथा मनोरंजन जुटाने के लिए अनावश्यक व्यय करने की कोई सीमा नहीं है।

यह अब प्रस्ताव है कि इस समय जो श्वेत और काले चित्रों वाला टी० वी० है, उसके स्थान पर रंगीन चित्रों का टी० वी० (टेलीविजन) प्रारंभ किया जाय। प्रधान मंत्री ने संसदीय परामर्शदात्री समिति की बैठक में यह कहा कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी, इलेक्ट्रोनिक्स, अंतरिक्ष और परमाणु ऊर्जा से संबंधित जितने भी विभाग हैं, उनमें भारत किसी से भी पीछे नहीं रहना चाहता और जहां तक रंगीन चित्रों वाले टी० वी० का प्रश्न है, उसमें भारत पीछे नहीं रहना चाहता तथा इस क्षेत्र में भी शोध और विकास कार्य होते रहने चाहिए। क्लोज्ड सर्किट टी० वी०, संभवतया रंगीन चित्रों का टी० वी० का उपयोग अस्पतालों और शैक्षिक संस्थाओं में किया जा सकता है। फिर भी उन्होंने यह कहा कि श्वेत और काले चित्रों वाले टी० वी० पर पहले ही किए गए निवेश का व्यापक रूप से उपयोग किया जाना चाहिए और रेडियो का उपयोग अधिकाधिक किया जाना चाहिए।

यद्यपि सूचना और प्रसारण मंत्रालय का इस प्रकार का कोई रिजर्वेशन नहीं है तथापि इलेक्ट्रोनिक्स विभाग ने रंगीन चित्रों वाले टी०वी० को तीव्र गति से अपनाने के संबंध में तर्क किए हैं। यह कहना व्यर्थ ही है कि रंगीन चित्रों के टी० वी० के प्रारंभ किए जाने से उन विशाल निधियों की हानि ही होगी जो श्वेत और काले चित्रों वाले टी०वी० में लगाई गई हैं।

रंगीन चित्रों वाले टी० वी० तथा छठी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत इस दिशा में प्रसार-कार्य तथा प्रोग्राम के कारण अतिरिक्त पूंजी लागत की अनुमानित 400 करोड़ रुपये की राशि संभवतया दूनी हो जायेगी और टी० वी० सेट की कीमत तिगुनी हो जायेगी। सूचना और प्रसारण मंत्रालय के वर्किंग ग्रुप ने यह अनुमान लगाया है कि एक सेट का मूल्य 8,300 रुपए होगा।

इस सब के बारे की यह विशेष चिन्ता है कि इससे हमारी सरकार में विकृत राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के साक्ष्य मिलते हैं। रंग अच्छा होता है लेकिन यह रंग किसलिए हो? यह रंगीन चित्रों का टी० वी० किसके लिए होगा? और किस कीमत पर? क्या यह देश में खाद्यान्न की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है जबकि हमारे देश में 50% से अधिक लोग गरीबी रेखा के नीचे रहते हैं। महत्त्वपूर्ण राष्ट्र निर्माण की परियोजनाओं से इतनी विशाल राशि (20 करोड़ रुपए) को रंगीन चित्रों वाले टी० वी० पर लगा देना बहुत बड़ी भूल होगी।

हम इस दुःखद वर्णन को सारांश रूप से उस समाचार की ओर संदर्भ देकर समाप्त करना चाहेंगे जो 12 जनवरी, 1981 को 'हिंदुस्तान टाइम्स', नई दिल्ली से प्रकाशित किया गया था :

उत्सव का समय

नई दिल्ली, 11 जनवरी (पी० टी० आई०) : अशोक होटल में गत नववर्ष के अवसर पर रात्रि भोजन के आयोजन में भारतीय पर्यटन विकास निगम के 330 उच्च अधिकारी अतिथि थे।

'फाइव-स्टार' अशोक होटल के कन्वेनशन हाल में उत्सव के मनोरंजन के कार्यक्रमों को 550 व्यक्तियों ने देखा जिनमें से जनता के 220 व्यक्तियों ने प्रति व्यक्ति 225 रुपए की दर से व्यय वहन किया जबकि शेष अतिथि निगम के अतिथि के रूप में आए थे।

अशोक होटल के कर्मचारियों की यूनियन के अनुसार निगम को एक ही रात में 75,000 रुपए की हानि उठानी पड़ी।

गांधीजी ने विलासितापूर्ण जीवन के बारे में इस प्रकार कहा है :

"स्वर्ण-युग तब होता है जब दृढ़तापूर्वक उस चीज को नकारा जाय जिससे लाखों लोग वंचित हैं। यह नकारने की दृढ़ता यकायक हममें नहीं आ जाती है। सबसे पहले हमें अपने अंदर ऐसी भावना उत्पन्न करनी है कि हम उन सब चीजों या सुविधाओं को प्राप्त करने का मोह त्यागें जिनसे लाखों लोग वंचित हैं तत्पश्चात् यथाशीघ्र हमें अपना जीवन इसी मानसिकता के तदनुरूप ढालना चाहिए।"

यह सत्य है कि गांधीजी एक संत थे और हम सभी साधारण व्यक्ति हैं अतः हम सभी उनके उपदेश के अनुसार अपना जीवन नहीं बिता सकते। लेकिन हम उन्हें ध्रुवतारा मान सकते हैं और हम यथाशक्ति ऐसे प्रयत्न कर सकते हैं ताकि उनके आदर्शों तक पहुंच सकें और उन्हें पूरा कर सकें।

अब हमें नौकरशाही के विस्तार और उसकी परिलब्धियों को कम करने के लिए आवाज उठानी चाहिए और इससे भी अधिक फिजूलखर्ची को बिल्कुल ही समाप्त करना चाहिए, साथ-ही-साथ विलासपूर्ण वस्तुओं की व्यवस्था के लिए व्यय को भी समाप्त करना चाहिए और भारी उद्योग के आगे के प्रसार की गति को भी धीमा करना चाहिए। इस प्रकार जो भी वित्तीय संसाधन उपलब्ध होंगे, उन्हें कृषि उत्पादन की ओर स्थानांतरण कर दिया जाएगा और गांवों के लिए सड़कों, स्कूलों, अस्पतालों तथा स्वच्छता सुविधाओं के जुटाने में लगा दिया जाएगा। इससे कुटीर स्तर पर कृषीतर व्यवसायों में संवर्द्धन भी होगा। हमारे देश में भारी उद्योग की भूमिका को आवश्यकताओं और प्रयोजनों की दृष्टि से सीमित कर देना चाहिए और इसका प्रावधान इन्हीं वित्तीय संसाधनों से किया जा सकता है जिससे सेवाओं का रख-रखाव हो सकता है और कृषि उत्पादन में काफी वृद्धि हो सकती है। कम-से-कम इस समय भारी उद्योग को उन जटिल क्षेत्रों में प्रसार करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जिसके पीछे वह बलवती इच्छा है कि हम विश्व में यथासंभव शीघ्रता के साथ शक्तिशाली राष्ट्रों में से एक राष्ट्र माने जायं। यदि सीमांत औद्योगिक अभाव विकसित होते हैं, तब ऐसी वस्तुएं जिनसे इन अभावों की समाप्ति हो सके, आयात की जाएंगी जैसा कि खाद्यान्न की अपेक्षा 1976 के अंत तक हम तर्कसम्मत रूप से इस्पात का आयात कर ही रहे थे।